साझी बातें

साझी बातें
2017
जेण्डर–समानता केन्द्रित शैक्षिक सामग्री
सम्पादन : प्रो. रूपरेखा वर्मा, सचिव, साझी दुनिया
प्रकाशनः
साझी दुनिया कैम्प ऑफ़िस
बी–335, गोल मार्केट महानगर, लखनऊ–226006
ई–मेलः saajhiduniya@gmail.com
वेबसाइटः www.saajhiduniya.org
सहयोग : यूनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रेंस फंड
सर्वाधिकार सुरक्षित

साझी बातें

विषय सूची

क्रम सं.	पाठ्य सामग्री	लेखक	कक्षा	पृष्ठ
1	भूमिका			
2	चम चम चन्दा (कविता)	साझी दुनिया टीम	पूर्व प्रा.-3	08
3	गिल्ली खूब पढी (कहानी)	साझी दुनिया टीम	पूर्व प्रा.-3	10
4	मम्मी पापा प्यारे प्यारे (कविता)	साझी दुनिया टीम	पूर्व प्रा.-3	12
5	रुनझुन का घोसला (कहानी)	साझी दुनिया टीम	पूर्व प्रा.-3	14
6	दोहरा काम (कविता)	साझी दुनिया टीम	3-5	16
7	मेरा घर (कविता)	साझी दुनिया टीम	3-5	18
8	जानवरों की सीख (कविता)	साझी दुनिया टीम	3-5	20
9	बच्चों की बारी (कहानी)	साझी दुनिया टीम	3-5	22
10	दोस्ती करोगे? (चिट्ठी)	साझी दुनिया टीम	3-5	26
11	मेरा घर मेरा काम (चिट्ठी)	साझी दुनिया टीम	3-5	28
12	कैसा ये घनचक्कर (चिट्ठी)	साझी दुनिया टीम	3-5	30
13	नहीं चलेगा गड़बड़झाला (कविता)	साझी दुनिया टीम	3-5	32
14	एक पिता का सपना (कविता)	साझी दुनिया टीम	6-8	34
15	चलो करें सब मिल कर काम (कहानी)	वेदा राकेश	6-8	36
16	घनचक्कर (कविता)	वेदा राकेश	6-8	42

17	रोटी गोल (नाटक)	साझी दुनिया टीम	6-8	44
18	भैया-दीदी (कविता)	साझी दुनिया टीम	6-8	48
19	बेटे का सवाल (कविता)	साझी दुनिया टीम	6-8	50
20	ताक़त (कहानी)	साझी दुनिया टीम	6-8	52
21	बच्चों का फ़रमान (कविता)	प्रीति चौधरी	6-8	54
22	बात की चोट (कहानी)	साझी दुनिया टीम	6-8	56
23	खूब लड़ी वो नारी थी (कविता)	साझी दुनिया टीम	6-8	60
24	अपंगता की हार (कहानी)	साझी दुनिया टीम	9-12	62
25	डर (कविता)	निर्मला ठाकुर	9-12	68
26	घर (कविता)	आभा	9-12	70
27	अस्तित्व (कहानी)	साझी दुनिया टीम	9-12	72
28	धूप किसकी? (कविता)	शकील सिद्दीकी	9-12	76
29	भारत में महिला मताधिकार(लेख)	साझी दुनिया टीम	9-12	78
30	ग़लती किसकी? (कहानी)	साझी दुनिया टीम	9-10	84
31	दोस्ती का अधिकार (कहानी)	साझी दुनिया टीम	11-12	92
32	लड़की की कहानी (कविता)	साझी दुनिया टीम	11-12	98
33	आत्मसम्मान (कहानी)	साझी दुनिया टीम	11-12	100

भूमिका

बच्चा जन्म लेने के बाद से बड़े होने तक शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक रूप से बहुत सी चीज़ों से प्रभावित होता रहता है। बालक या बालिका की सोच कैसी है, आदतें कैसी हैं, अच्छे–बुरे का ज्ञान कैसा है – सभी कुछ बाहरी वातावरण के असर से तय होता है। इस वातावरण में विवेक, सम्वेदना, दूसरों के प्रति बराबरी का भाव, लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रधानता होगी तो हमारे बच्चे इन गुणों को ख़ुद ही अपनायेंगे और उनके चरित्र में इन गुणों की प्रधानता होगी। अगर उनका वातावरण ग़ैर–बराबरी, होड़, सम्वेदनहीनता, जातिवाद, धर्मान्धता या जेण्डर–भेदभाव से भरा है तो उन्हें यही व्यवस्था स्वाभाविक और ठीक लगेगी।

स्कूल का वातावरण, वहाँ पढ़ाई जाने वाली किताबें, वहाँ के शिक्षकों की सोच और व्यवहार इस बड़े वातावरण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। बच्चों पर घर के बाद स्कूल ही सबसे ज़्यादा प्रभाव डालने वाली संस्था होती है। इसलिए अगर वहाँ अपने देश के सम्वैधानिक मूल्यों की चेतना जगाने का काम सम्वेदनापूर्वक किया जाये और शिक्षा–प्रक्रिया को रोचक बनाया जाये तो अगली पीढ़ी एक बेहतर समाज की भागीदार बन सकती है।

इसी उम्मीद के साथ 'साझी दुनिया' ने यूनीसेफ़ के साथ मिलकर एक छोटा लेकिन महत्वपूर्ण क़दम उठाया है। हमने लड़कों और लड़कियों के बीच भेदभाव की निशानदेही करने और उनके बीच समतामूलक नज़रिये को पनपने के लिए कुछ शैक्षिक सामग्री तैयार की है जिसे हम पूर्व–प्राथमिक से उच्च–माध्यमिक स्तर तक कुछ चुने हुये स्कूलों (हर स्तर पर एक सरकारी और एक ग़ैर–सरकारी स्कूल) में बच्चों तक यथाशक्ति मनोरंजक तरीक़े से पहुँचाने की कोशिश करेंगे।

लड़कों और लड़कियों के बीच के भेदभाव की अनेक परतें हैं – कुछ साफ़ दिखने वाली और कुछ बहुत सूक्ष्म, मुश्किल से दिखने वाली। हमारे इस काम की यह शुरुआत ही है और यह हमारे लिए भी बहुत कुछ सीखने का समय है। शुरुआत का यह दौर हमारे लिये एक प्रयोग है। इसलिए अभी हमने शैक्षिक सामग्री में भेदभाव के कुछ स्थूल रूप ही लिए हैं। अगर यह प्रयोग कारगर साबित हुआ तो आगे और बेहतर सामग्री बनाने का काम जारी रहेगा।

इस काम में अगर कुछ सफलता मिलती है तो उसके लिए वे स्कूल और वे बच्चे, जिनके साथ हमने अपनी सामग्री का प्रयोग किया है, बधाई के पात्र हैं। जो भी असफलतायें मिलेंगी उनके लिए 'साझी दुनिया' की टीम पूरी ज़िम्मेदारी लेना चाहेगी।

हम यूनीसेफ़, विशेष रूप से डॉ. नीलोफ़र पौर्जेण्ड और सु. पीयूष एण्टोनी के आभारी हैं कि इस काम में उनका सहयोग मिला। उन सभी स्कूलों के प्रधानाचार्यों के भी हम आभारी हैं जिन्होंने हमें अपनी सामग्री का प्रयोग अपने स्कूल में करने की अनुमति दी। विशेष आभार उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग में सह–निदेशक श्री वी.के. पाण्डेय, का जिन्होंने सरकारी स्कूल में हमें अनुमति दिलाने में मदद की। सामग्री तैयार करने में लगातार जिस टीम ने मदद की उनमें शामिल हैं – अंकिता मिश्रा, तसनीम फ़ातिमा, शावेज़ वारिस, तज़ीन फ़ातिमा और कुलदीप चौहान।

रूपरेखा वर्मा

सचिव, साझी दुनिया

चम चम चन्दा

चम चम चन्दा, टिम टिम तारे
मेरे मम्मी–पापा न्यारे

दोनों मिल के खाना पकायें
दोनों मिल के घर को सजायें

दिन में दोनों काम पे जाते
शाम को मेरे संग वो खेलते

पापा कहते मम्मी अच्छी
मम्मी कहती पापा अच्छे
मैं कहता दोनों हैं अच्छे

गिल्ली ख़ूब पढ़ी

एक बेबी ख़रगोश थी। छोटी–सी। उसका नाम था गिल्ली। गिल्ली की माँ थी मिल्ली और पापा थे–दुल्लू। गिल्ली का एक भाई भी था। गिल्ली से एक साल छोटा था वो। नाम था उसका–टिल्लू।

टिल्लू और गिल्ली रोज़ सुबह स्कूल जाते थे। स्कूल की कमीज़ और निकर पहन के वो बड़े प्यारे लगते थे। रास्ते में वो गिलहरी चाची से बात करते। हिरन मामा की पीठ पे कूद के चढ़ जाते। फूलों और तितलियों से हाल–चाल पूछते। स्कूल वो हमेशा सही टाइम पर पहुँचते।

एक दिन जब गिल्ली और टिल्लू घर वापिस पहुँचे तो उन्होंने देखा कि भालू ताऊ वहाँ बैठे हैं। वो उनके मम्मी–पापा मिल्ली और दुल्लू से कह रहे थे, "अब गिल्ली पाँचवीं क्लास पास कर चुकी है। उसका स्कूल जाना बन्द करो। लड़कियों को ज़्यादा पढ़ाने से कोई फ़ायदा नहीं।"

दुल्लू ने सिर हिलाते हुए कहा, "भाई जी, आप कहते तो ठीक हैं।" मिल्ली घबरा के बोली, "नहीं! नहीं! मेरी गिल्ली ख़ूब पढ़ेगी। फ़ायदा कैसे नहीं? पढ़ के समझदार हो जाएगी। दस चीज़ सीखेगी। नहीं तो मेरे जैसी बेवकूफ़ रह

जाएगी। "दुल्लू ने फिर सिर हिलाते हुए कहा, ये भी ठीक है।"

भालू गुस्सा हो कर बोला, "दुल्लू, तुम कैसे आदमी हो? कहते हो ये भी ठीक है, वो भी ठीक है। लड़की है गिल्ली। उसे समझदार बनाने की क्या ज़रूरत? बच्चे ही तो सम्हालेगी वो? हाँ, टिल्लू को ख़ूब पढ़ाओ। उसे बड़े काम करने हैं।"

मिल्ली बोली, "नहीं ! नहीं ! मेरी गिल्ली भी बड़े काम करेगी। होशियार बनेगी। बड़ी अच्छी है पढ़ाई में वो।"

गिल्ली भी बोल उठी,"भालू ताऊ, मैं ख़ूब पढ़ूँगी। होशियार बनूँगी। मैं स्कूल नहीं छोड़ूँगी।"

दुल्लू ने कहा, "भालू भाईसाहब, मैं भी यही चाहता हूँ कि मेरी बेटी भी उतना पढ़े जितना मेरा बेटा टिल्लू। दोनों का समझदार बनना ज़रूरी है। नहीं तो बड़ी परेशानियाँ होती हैं जैसे मेरी बीवी को हुयी। मैं तो कहूँगा कि आप भी अपनी बिटिया का स्कूल मत छुड़ाइये।"

तभी सबने देखा कि भालू मम्मी और भालू की बेटी उसे ढूँढ़ते हुए ख़रगोश के घर आ गए थे और बाहर से सारी बातें सुन रहे थे। भालू मम्मी और बेबी भालू अन्दर आ गईं और बेबी भालू बोली, "हाँ पापा! मैं स्कूल नहीं छोड़ूँगी। पढ़ाई से बहुत फ़ायदा होता है। मुझे भी वो फ़ायदा चाहिए। प्लीज़ पापा, ज़िद मत करिए"।

भालू ताऊ सिर झुका के बोले,"तुम लोग जीते। मैं समझ गया कि पढ़ाई तो लड़के–लड़की दोनों के लिए ज़रूरी है।"

तीनों बच्चे बहुत ख़ुश हुए। गिल्ली और टिल्लू भालू ताऊ के पास ख़ुशी से उछलते–नाचते पहुँचे और बोले, "थैंक यू प्यारे भालू ताऊ !!"

मम्मी - पापा प्यारे - प्यारे

मम्मी–पापा प्यार–प्यारे
मिल–जुल करते काम वो सारे

मम्मी हमको रोज़ जगाती
चाय पापा की सबको भाती

माँ ने सब्ज़ी, दाल पकायी
पापा ने रोटी गोल बनायी

हम सब ने मिल–जुल कर खायी
अब मैं करूँगी जम के पढ़ायी

रुनझुन का घोसला

एक चिड़िया थी झुनझुन। उसकी बेटी थी रुनझुन। रुनझुन के पापा का नाम था– मुनमुन। एक दिन मुनमुन बोला, "घोसला तो मैं ही अच्छा बना लेता हूँ। झुनझुन नहीं बना सकती।"

झुनझुन को बुरा लगा। उसने पूछा, "क्यों?"

मुनमुन बोला, "तुम लड़की हो। लड़कियों में कम ताक़त होती है। उनमें दिमाग़ भी कम होता है। घोसला बनाने के लिए ताक़त और दिमाग़ दोनों की ज़रूरत होती है।"

झुनझुन तुनक के बोली, "मैं सुबह से खाना–दाना बटोरती हूँ रुनझुन के लिए। उसे पालती हूँ। इस में क्या ताक़त और दिमाग़ नहीं लगता?"

मुनमुन बोला, "वो तो है। खाने–दाने की पहचान तो लड़कियों को ही ज़्यादा होती है। लेकिन तुम घोसला नहीं बना सकतीं। उसमें दूसरी तरह की अक़्ल चाहिए जो हम लड़कों में ही होती है।"

झुनझुन कुछ सोचने लगी और चुप हो गई।

रुनझुन सारी बात सुन रही थी। उसके पर निकलना शुरू हुए थे और कुछ चलने–फिरने लगी थी लेकिन उड़ नहीं पाती थी। उसे पापा मुनमुन की बात अच्छी नहीं लगी। पापा मुनमुन जैसे ही बाहर गया, रुनझुन मम्मी झुनझुन से बोली, "मम्मी–मम्मी, हम एक अच्छा घोसला बना के पापा को दिखायेंगी। आप तिनके लाना। मैं उन्हें पत्तों के ऊपर ठीक से रखती जाऊँगी।"

दिन में देर तक रुनझुन और झुनझुन ने मेहनत की और एक बहुत सुन्दर, प्यारा–सा घोसला बना लिया। घोसला मज़बूत भी ख़ूब था।

मुनमुन शाम को आया तो घोसला देखता रह गया। बोला, "मैं ग़लत सोचता था। लड़कियों में भी दिमाग़ होता है। लड़कियों में ताक़त भी होती है। भई, इतना अच्छा घोसला मैं तो नहीं बना सकता था!"

रुनझुन बोली, "पापा, आप बहुत प्यारे हो। मम्मी जितने प्यारे!"

सभी हँसने लगे और एक–दूसरे का हाथ पकड़ कर पेड़ की पत्तियों पर ख़ूब नाचे।

दोहरा काम

करती हूँ मैं सारा काम
मिलता नहीं मुझे आराम
दफ़्तर जा के फ़ाइल निपटाती
घर आती तो खाना बनाती
करती सबका टिफ़िन तैयार
फिर भी सुनूँ मैं बातें चार
घर–दफ़्तर में पिसती हूँ
लेकिन फिर भी हँसती हूँ
ओवर टाइम में जो हो देर
आँख दिखाये मुझे हरेक
रखती हूँ मैं सबका ख़्याल
कोई न पूछे मेरा हाल

मेरा घर

तिन–तिन धिन्ना, तिन–तिन धिन्ना
चलो–चलो सब मेरे अँगना

देखो कैसा घर है मेरा
ख़ुशियों से वो भरा है पूरा

करें यहाँ सब मिल के काम
और करें मिल के आराम

कोई किसी पे हुकुम न चलाए
कोई किसी को आँख न दिखाये

तिन–तिन धिन्ना, तिन–तिन धिन्ना
चलो–चलो सब मेरे अँगना

साफ़– सफ़ाई, खाना पकाना
कभी करे नानी, कभी करे नाना

सीना–पिरोना, बटन टाँकना
कभी करे भाई, कभी करे बहना

तिन–तिन धिन्ना, तिन–तिन धिन्ना
चलो–चलो सब मेरे अँगना

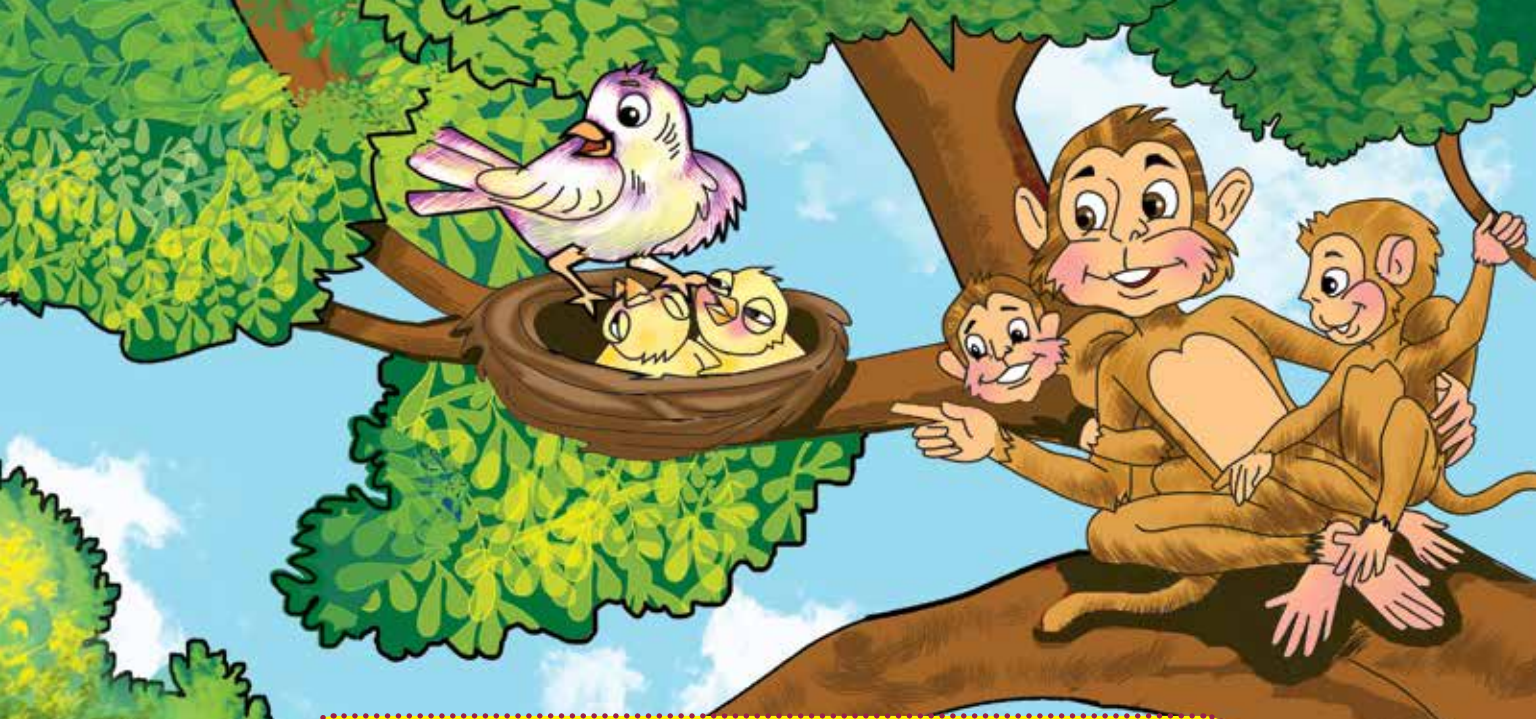

जानवरों की सीख

खों–खों, खों–खों बन्दर भैया
चीं–चीं, चीं–चीं चिड़िया रानी

बन्दर बोला–सुन री चिड़िया
इन्सानों की अजब कहानी

पुचकारें लड़कों को लेकिन
आँख दिखायें लड़की को

बन्दर, भालू, तितली, पंछी
कभी न ये दुख दें बिटिया को

इन्सानों से चलो कहें हम
सीखो कुछ अच्छा हमसे तुम

खों–खों, खों–खों बन्दर भैया
चीं–चीं, चीं–चीं चिड़िया रानी

सुन री प्यारी चिड़िया रानी
इन्सानों की अजब कहानी

बच्चों की बारी

एक लड़का था समीर। एक लड़की थी रीना। समीर और रीना पड़ोसी थे। दोनों पास के एक स्कूल में क्लास 2 में पढ़ते थे। समीर और रीना एक साथ स्कूल जाते थे।

एक दिन जब रीना समीर को बुलाने उसके घर गयी तो देखा कि समीर अपनी मम्मी से चिपट के रो रहा है। लगता था, उसकी मम्मी भी रोयी थी। बड़ी मुश्किल से समीर मम्मी से अलग हुआ और स्कूल जाने को राज़ी हुआ।

रास्ते में रीना ने समीर से पूछा कि वो रो क्यों रहा था तो समीर फिर से रोने लगा। स्कूल को देर हो रही थी। रीना ने समीर से फिर नहीं पूछा। उसे लगा कि समीर ज़्यादा रोने लगेगा।

स्कूल में समीर का मन पढ़ाई में नहीं लगा। टीचर ने क्या पढ़ाया, उसे ज़रा भी याद नहीं रहा। आज उसने अपने एक अच्छे दोस्त साहिल से झगड़ा भी कर लिया। ऐसा उसने पहले कभी नहीं किया था। वो अपनी क्लास

के सभी बच्चों से दोस्ती करता था और अपनी मज़ेदार बातों से छुट्टी के समय उन्हें हँसाता रहता था। इसलिए सभी उससे बहुत प्यार करते थे।

आज जब समीर ने झगड़ा किया और किसी से ठीक से बात नहीं की तो रीना ने कहा, "आज सुबह ये बहुत रो रहा था। इसकी मम्मी भी रोयी थीं। कुछ बात है।" सभी बच्चों ने समीर को घेर लिया और बोले, "बताओ–बताओ, क्या हुआ?" समीर बोला, "तुम लोग जाओ। कुछ नहीं हुआ।" बच्चे फिर बोले, "हम नहीं जायेंगे। बताओ, क्यों रो रहे थे? नहीं बताओगे तो हम तुम से खुट्टी कर लेंगे।" समीर फिर रोने लगा और सुबकते हुए बोला, "मेरे पापा ने मम्मी को डाँटा और मारा भी। कल भी वो किसी बात पर मम्मी पर चिल्लाये थे और उन्हें चाँटा मारा था" कुछ बच्चे हैरान हो के बोले, "अरे क्यों?" समीर बोला, "मम्मी नानी के पास कुछ दिन को जाना चाहती हैं। पापा ने मना किया। मम्मी ने दोबारा कहा तो चिल्लाये और मारा।"

क्लास की रीना बोली, "मेरे पापा भी मेरी मम्मी को अक्सर मारते हैं। मुझे भी बहुत रोना आता है।" अरमान ने कहा, "मेरे ताऊ मेरी बुआ को हरदम डाँटते रहते हैं। बुआ अक्सर अकेले में रोती रहती हैं। मुझे बहुत घबराहट होती है। पढ़ाई, खेल–किसी चीज़ में मन नहीं लगता।" अरमान भी रोने लगा। सभी बच्चे बहुत उदास हो गए।

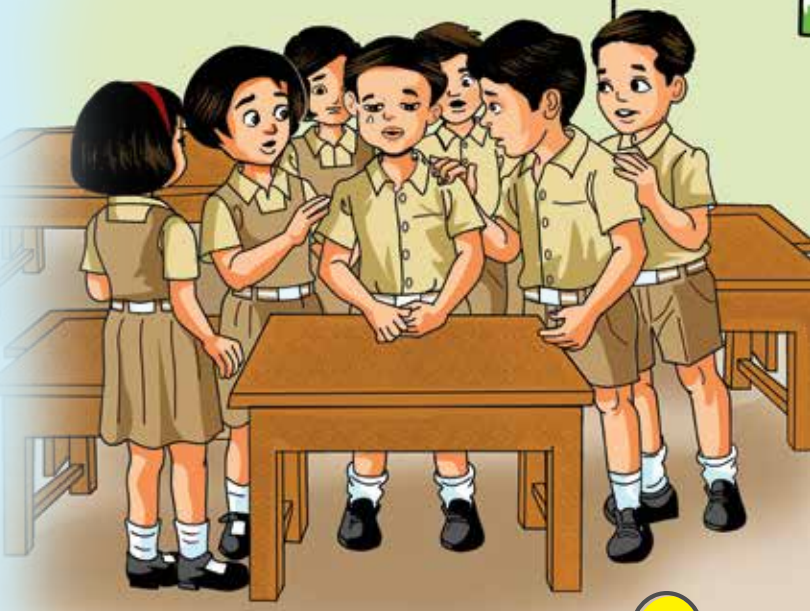

तभी टीचर क्लास में आ गये और ख़ुश हो कर बोले, "आज तो ज़रा भी शोर नहीं है क्लास में सभी बच्चे बड़े समझदार हो गये हैं भाई!" लेकिन तभी उन्होंने बच्चों की तरफ़ देखा और उन्हें लगा कि बात कुछ और ही है। बच्चे किसी बात से दुखी और उदास हैं। उन्होंने पूछा तो पहले तो सब चुप रहे, फिर रीना ने पूरी बात बता दी। टीचर पहले कुछ सोचते रहे, फिर बोले, "मैं कुछ करूँगा, परेशान मत हो। चलो, आज हम क्लास में किताब नहीं पढ़ेंगे, बग़ीचे में फूल और पौधे पहचानेंगे।" टीचर बच्चों को स्कूल के बग़ीचे में ले गए। रीना एक गीत "सारे के सारे गा मा को ले के गाते चले", बहुत अच्छा गाती थी। उसने सबको यह गीत सुनाया। बच्चों की उदासी दूर हो गयी।

अगले दिन स्कूल में सभी बच्चों के माँ–बाप, ताऊ वग़ैरह को बुलाया गया और रीना की क्लास के टीचर और प्रिन्सिपल मैडम ने उनसे बड़ी देर तक बात की। उन्हें समझाया कि डाँटना मारना बुरे आदमी की निशानी है। ऐसे आदमी बदतमीज़ माने जाते हैं। बच्चों पर इसका बुरा असर पड़ता है। वो डर जाते हैं और ग़लत चीज़ भी सीख सकते हैं।

प्रिन्सिपल मैडम ने बच्चों को भी समझाया कि वो अपने मन की बात अपने मम्मी–पापा को ज़रूर बताया करें। टीचर जी और प्रिन्सिपल को भी बताया करें जिससे वो मदद कर सकें।

अगले दिन समीर ख़ूब ख़ुश था और पहले की तरह अपने साथियों को हँसा रहा था। उसने बताया, "मेरे पापा ने आज मुझे ख़ूब प्यार किया और कहा कि अब तेरी मम्मी को कभी नहीं डाटूँगा । कभी मारूँगा भी नहीं। मम्मी

भी हँस रहीं थी, बहुत दिनों बाद।" रीना बोली, "मेरी मम्मी भी आज ज़्यादा खुश लग रही थीं। शायद पापा सुधर रहे हैं।"

अरमान परेशान था। बोला, "लेकिन मेरे घर तो अभी कुछ भी नहीं सुधरा है। मेरे घर सब ठीक कैसे होगा?" रीना बोली, "घबरा मत अरमान! एक बार और प्रिन्सिपल मैडम से कहते हैं। नहीं तो हम बच्चों की ये फ़ौज है न? अब हमारी बारी है इन बड़ों को सुधारने की।" सारे बच्चे खुश हो कर बोले, "हाँ, हाँ, ये ठीक है।"

रीना उछल–उछल कर गाने लगी, "सारे के सारे गा मा को ले के गाते चले!" सभी बच्चे झूम झूम के रीना के पीछे गाने लगे, "सारे के सारे गा मा को ले के गाते चले!!"

दोस्ती करोगे ? (ख़ुशी की चिट्ठी)

दोस्तो,

मेरा नाम है – ख़ुशी। मैं 12 साल की हूँ। मैं आपकी दोस्त बनना चाहती हूँ। मेरे भाई का नाम है – अमन। वह 8 साल का है। वह भी आपका दोस्त बनना चाहता है। हम दोनों को बहुत सी बातें समझ में नहीं आती हैं। मम्मी–पापा, दादी या चाचा से पूछते हैं तो सब कहते हैं कि बड़े होकर समझ जाओगे।

क्या हम आप सबसे वो बातें कर सकते हैं जो हमें परेशान करती हैं? आपसे बातें कर के शायद जवाब मिल सकें। जवाब न मिलें तो भी बातें करके मज़ा ख़ूब आएगा।

तो बताइए, आप हमारे दोस्त बनेंगे?

आपकी,
ख़ुशी

मेरा घर, मेरा काम (अमन की चिट्ठी)

दोस्तो,

कल से मैं एक बात से परेशान हूँ। कुछ बातें समझ में ठीक से नहीं आ रहीं। सोचा, तुम लोगों से पूछूँ।

कल शाम को समीर अंकल और सीमा आंटी घर आए थे। उस वक़्त मैं और मेरी बहन खुशी टीवी देख रहे थे। मम्मी ने खुशी को आवाज़ लगायी कि अंकल–आंटी के लिए पानी ले आओ। इससे पहले कि खुशी उठती, मैं दौड़ कर पानी ले आया। जब अंकल–आंटी चले गए तब मम्मी और पापा ने खुशी को डाँटा, "तुम पानी ले कर क्यो नहीं आई? लड़की हो लेकिन घर के किसी काम मैं तुम्हारा दिल नहीं लगता।" उन्होंने मुझे भी डाँटा कि मैं खुशी की आदतें बिगाड़ रहा हूँ।

मेरे कारण खुशी को डाँट पड़ी, इस बात का मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं खुशी की आदतें बिगाड़ रहा हूँ, यह बात तो मेरी समझ में ही नहीं आई। अभी परसों ही मुझसे पापा ने अख़बार लाने को कहा था लेकिन मेरे उठने से पहले खुशी झट–से उठ कर अख़बार ले आई। उसे तो डाँट नहीं पड़ी। उल्टे, उसे पापा ने बहुत प्यार किया।

मुझे बुरा लगता है कि घर के काम मेरे चाहने पर भी मुझसे कभी नहीं कराए जाते। मैं भी घर के छोटे–मोटे कामों में मम्मी की मदद करना चाहता हूँ लेकिन मम्मी–पापा कहते हैं कि ये काम मेरे नहीं, लड़कियों के हैं। मुझे समझ में नहीं आता कि इन कामों में ऐसी क्या बात है कि ये मेरी बहन खुशी ही कर सकती है?

क्या मैं घर में नहीं रहता? क्या मैं घर में खाना नहीं खाता? क्या यह घर मेरा नहीं है? लड़कों और लड़कियों के काम अलग होने का मतलब क्या है?

तुम लोग क्या सोचते हो, जल्दी से जल्दी बताना।

तुम्हारा दोस्त,
अमन

कैसा ये घनचक्कर ?

हेलो फ्रेंड्स,

आप सब हमारे दोस्त बनने को तैयार हैं, यह जान कर मैं बहुत खुश हूँ। आप सबसे बातें करे के बड़ा मज़ा आ रहा है। मेरा भाई अमन भी बहुत खुश है कि उसे बहुत से नए फ्रेंड्स मिले।

अमन चिट्ठी लिखते समय बहुत दुःखी था। मुझे भी बहुत बार ऐसी बातों पर डाँट पड़ती है जो मुझे समझ नहीं आतीं। अगर मैं ज़्यादा सवाल करूँ या किसी काम को न करना चाहूँ तो मुझे डाँटा जाता है कि मैं लड़कों की तरह बहस करती हूँ और अकड़ती क्यों हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें लड़कों की तरह होने की क्या बात है? मन में सवाल आते हैं तो कैसे न पूछूँ? बहस करना क्या बुरी बात है? अमन बहस करता है तब तो मम्मी–पापा और ताऊ जी बड़े खुश होते हैं कि वह बहुत अक्लमन्द है। ये सब क्या घनचक्कर है, मेरी तो समझ में नहीं आता।

कुछ दिन पहले एक कविता 'नहीं चलेगा गड़बड़झाला' पढ़ी जिसे मैं आपके पास भेज रही हूँ। बताइएगा कि आपको कैसी लगी।

आपकी,
खुशी

नहीं चलेगा गड़बड़झाला

अगड़म–बगड़म छम्पक छाप
बात हमारी सुनिये आप
नहीं चलेगा गड़बड़झाला
समझ गये अब हम ये घोटाला
दीदी को कमज़ोर बनायें
और भैया को अक्खड़
हमें बतायें होते ही ऐसे
लड़का–लड़की दरअसल
नहीं चलेगा, नहीं चलेगा
अब ऐसा घनचक्कर!

एक पिता का सपना

घर में आयी नन्हीं बिटिया
संग में लायी कितनी ख़ुशियाँ

बात पते की मैं बतलाऊँ
देख उसे मन में मुस्काऊँ

मैं मुनिया का पापा हूँ
करता ख़ुद से वादा हूँ

ख़ूब पढ़ाऊँ ख़ूब लिखाऊँ
उसे किसी क़ाबिल बनवाऊँ

नहीं बनेगी अबला नारी
बनेगी सबला, न बेचारी

समझौता वो नहीं करेगी
ज़ुल्मों से वो डट के लड़ेगी

घर में आयी नन्हीं बिटिया
संग में लायी कितनी ख़ुशियाँ

बात पते की मैं बतलाऊँ
देख उसे मन में मुस्काऊँ

चलो करें सब मिल कर काम

मैं तुम्हें सुनाऊँगी खुशी और अमन की कहानी। खुशी सातवीं क्लास में पढ़ती थी और उसका छोटा भाई अमन तीसरी में। खुशी बहुत तेज़ थी पढ़ने में। स्कूल में दीदी लोग और हेड मास्टर तक उसकी तारीफ़ करते थे। वह, हर क्लास में लगातार सबसे ज़्यादा नम्बर पाती रही थी। रात को जब दोनों अगल–बगल लेटे बातें करते, तब वह अमन को दुनिया के अलग–अलग देशों की बातें बताती।

"जानते हो अमन, एस्किमो नाम के लोग बर्फ़ के मकान बना कर रहते हैं। उन मकानों को 'इग्लू' कहा जाता है।

"जानते हो, इस धरती के ऊपरी और निचली छोर को, उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव कहते है। उनके आस–पास के इलाकों में छह महीने लगातार दिन और छह महीने लगातार रात होती है।

"पता है, शेर दिन में 20 घण्टे सोता है?

"अमन, यूरेनस एक ऐसा ग्रह है जहाँ जाड़े का मौसम 21 साल तक रहता है।

"हथिनी अपने सूंड से अपने बच्चे को खिसका लेती है।

ये सब बातें सुन कर अमन को बड़ा मज़ा आता। खुशी को पढ़ने का इतना शौक़ था कि ज़्यादातर वक़्त उसके हाथों में कोई न कोई किताब होती थी और ऐसी दसियों बातें बता कर वह अमन को हैरान कर देती थी। उसके पापा को उस पर गर्व था। वह बड़े सवेरे उठ कर पढ़ाई करती। वह अमन को भी उठाती लेकिन वह अलसाया पड़ा रहता"....दीदी, कल से.... कल से ज़रूर उठ कर पढूँगा। बस, आज सो लेने दो।" वह कहती: "तू और तेरा कल। सुबह की पढ़ाई अच्छी होती है। सबक़ जल्दी याद होगा और दिमाग़ में बैठ जाएगा। और देखो, अभी से पढ़ लोगे तो इम्तिहान के दिनों में हाय–तौबा नहीं मचाओगे। उस वक़्त तुम्हें कैसे पढ़ाऊँ? मेरे भी तो इम्तिहान होते हैं"

अमन कहता : "अच्छा कल से....एकदम पक्का। तुम्हें मुझे उठाना भी नहीं पड़ेगा, मैं ख़ुद उठ जाऊँगा। आज से घड़ी में अलार्म लगा देना।"

सब कुछ हँसी–ख़ुशी चल रहा था कि अचानक उनकी माँ बीमार हो गई। तेज़ बुख़ार – दो दिन, चार दिन, एक हफ़्ता–महीना। बुख़ार था कि उतरने का नाम ही न लेता था। पापा माँ को ले कर डॉक्टरों के यहाँ चक्कर काटने लगे। घर का सारा काम ख़ुशी के कन्धों पर आ गया। वह बुरी तरह थक जाती थी। पढ़ाई के लिए भी मुश्किल से वक़्त निकाल पाती थी। सुबह उठते ही झाड़ू, बर्तन, चाय–नाश्ता। फिर खाना बना कर पापा, अमन और ख़ुद के टिफ़िन में रखती। माँ की देखभाल करती। उनकी दवा और पानी रखना

भी नहीं भूलती। घर से स्कूल और स्कूल से लौट कर फिर घर का सारा काम। रात को बिस्तर पर लेटते ही गहरी नींद में सो जाती। अमन मन मसोस कर रह जाता। कभी–कभी शिकायत भी करता, "तुम कितनी जल्दी सो जाती हो, मुझसे बात भी नहीं करती?" ख़ुशी कहती "मैं थक गई हूँ, अमन। अच्छा 'आज रात तुम्हें उबलते पानी वाले सोतों की बात बताऊँगी।" अब अमन सवेरे जल्दी उठ कर पढ़ने लगा था जब ख़ुशी घर मे कामों में लगी रहती। एक ओर ज़्यादा काम और माँ की फ़िक्र तो दूसरी ओर ठीक से पढ़ाई न होने की वज़ह से इस बार के छमाही इम्तिहान में अच्छे नम्बर नहीं ला पाई। ख़शी उदास थी कि अगर सालाना इम्तिहान में भी ऐसा ही कुछ रहा तो अगले साल उसे वज़ीफ़ा नहीं मिलेगा।

क़रीब तीन महीने बाद जा कर माँ का बुख़ार उतरा। उस दिन जब पापा डॉक्टर के यहाँ से माँ को ले कर लौटे तो एक तरफ़ थोड़ी राहत मिली तो दूसरे तरफ़ वह बहुत फिक्रमन्द भी थे। अब तो माँ का बुख़ार उतर गया, तब पापा इतने उदास क्यों हैं, उसने सोचा। पापा ने ख़ुशी और अमन को अपने पास बुलाया। माँ चुपचाप लेटी हुई थीं। पापा ने कहा,"बुखार तो उतर गया है लेकिन डॉक्टरों ने कहा है कि तुम्हारी माँ को पूरी तरह ठीक होने में अभी वक़्त लगेगा। इसलिए ख़ूब आराम और अच्छी ख़ुराक की ज़रूरत है।"

ख़ुशी बोली, "तो ठीक है न पापा... माँ ख़ूब आराम करे। मैं तो सब सँभाल रही हूँ न? पापा बोले, "मैं जानता हूँ बेटी, लेकिन तुम्हारे सालाना इम्तिहान में ज़्यादा दिन नहीं हैं। घर के कामों से तुम्हें फ़ुर्सत नहीं मिलती। पढ़ाई कैसे कर पाओगी? इतने पैसे भी नहीं हैं कि कोई कामवाला रख लिया जाए। फिर तुम्हारी माँ की दवा, फल, सब्ज़ी, राशन, किराए का ख़र्चा भी पूरा करना है। समझ में नहीं आता क्या करूँ, कैसे करूँ?"

खुशी चुप थी। अमन ने उदासी से कहा, "फिर क्या करें, पापा?" पापा बोले, "मुझे तो इसके अलावा कोई और रास्ता नहीं सूझता कि अमन तुम भी घर के कामों में दीदी का हाथ बँटाओ जिससे खुशी अपनी पढ़ाई के लिए समय निकाल सके।" अमन बोला, "लेकिन पापा मुझे तो घर को कोई काम आता ही नहीं।" मम्मी ने धीमी आवाज़ में कहा, "अरे बेटा, छोटे–मोटे काम खुशी सिखा देगी। अब मजबूरी में किया क्या जाए?" खुशी बोली, "लेकिन मम्मी, पड़ोस वाली मीना चाची कहती हैं कि घर के काम करना लड़कियों का काम है। लड़कों से घर के काम नहीं कराने चाहिए। लड़कों के ज़िम्मे बाहर के काम होते हैं।" उसकी बात काटते हुए पापा ने कहा, "ये सब दकियानूसी बातें हैं। कोई भी काम लड़कियों और लड़कों के अलग से नहीं हैं। यदि खाना बनाना सिर्फ़ औरतों का काम होता तो होटल में आदमी लोग खाना क्यों बनाते? और क्या लड़कियाँ खेल–कूद में हमारे देश का नाम ऊँचा नहीं कर रहीं हैं? अन्तरिक्ष में जाने लगी हैं लड़कियाँ। बेटा, मैं तो खुद घर के कामों में तुम्हारी मदद करना चाहता हूँ लेकिन दफ़्तर और ट्यूशन की वजह से यह मुमकिन नहीं हो पाता।"

अमन बोला, "नहीं, नहीं। आपकी जगह मैं खुशी की मदद करूँगा। दीदी खाना बनाएगी, मैं परोस दूँगा, टिफ़िन लगा दूँगा। वह बर्तन माँजेगी तो मैं उन्हें धोकर रैक में लगा दूँगा। मैं कपड़े सुखाऊँगा और शाम को स्कूल से आ कर उन्हें तह कर दूँगा और कुछ खाना बनाना भी सीख लूँगा। ठीक है न दीदी?" पापा ने ख़ूब शाबाशी दी और कहा, "मैं भी करूँगा काम तुम लोगों के साथ, जितना हो सके। देखो बच्चो, मिल–जुल कर काम करने में ही सबका भला होता है।" अमन चहक कर बोला, "ठीक है पापा...लेकिन वह रस्सी थोड़ा नीचे बाँध दीजिए जिस पर कपड़े सूखते हैं। मेरा हाथ वहाँ तक पहुँच नहीं पाता।"

उसकी यह बात सुन कर खुशी और पापा के साथ माँ भी ज़ोर से हँस पड़ी।

घनचक्कर

माँ, तुम देती थीं हरदम
अपनी गुड़िया को गुड़िया ही

बर्तन–भाड़े, चूल्हा–चौकी
चकला–बेलन, बिन्दी–टिकली

भैया को देतीं थीं मोटर
या जहाज़ लगा जिसमें हूटर

पर उलट–पुलट सब हुआ देख
कैसा ये चल गया घनचक्कर

तेरी गुड़िया तो चला रही
मोटर गाड़ी और हवाई जहाज़

रॉकेट तक में वो सैर करे
और नाज़ करे उस पे समाज

रोटी गोल

चाचा – सीमा बेटी, तुम क्या कर रही हो?

सीमा – चाचा, मैं गीत याद कर रही हूँ।

चाचा – अरे वाह! चलो ज़रा सुनें, मेरी बेटी कौन–सा गीत याद कर रही है?

सीमा – जी चाचा, मैं अभी सुनाती हूँ।

सीमा उत्साह से खड़े होकर गाती है:

"मम्मी की रोटी गोल–गोल

पापा का पैसा गोल–गोल

सूरज गोल चन्दा गोल

पूरी दुनिया गोल–गोल"

चाचा – रुको, रुको सीमा। यह कैसा गीत तुम्हें सिखाया गया है?

सीमा – क्यों चाचा? अच्छा तो है यह गीत!

चाचा – अच्छा रुको, मैं तुम्हें अभी समझाता हूँ कि इसमें क्या ख़राबी है? ज़रा यह बताओ कि 'मम्मी की रोटी गोल–गोल, पापा का पैसा गोल–गोल' क्यों कहा जा रहा है? अगर हम इसे उल्टा कर दें और कहें कि 'पापा की रोटी गोल–गोल, मम्मी का पैसा गोल–गोल' तो?

सीमा–ही–ही–ही। चाचा, ऐसा थोड़े होता है! पापा लोग रोटी कहाँ बनाते हैं?

चाचा–अच्छा, यह बताओ सीमा कि पापा लोग रोटी क्यों नहीं बनाते हैं?

सीमा (उछल के कहती है)– क्योंकि पापा आदमी हैं और आदमी रोटी नहीं बनाते।

चाचा–अच्छा, ये बात है! पापा आदमी हैं इसलिए! अच्छा, कल तुम मेरे साथ ढाबे पर खाना खाने गयी थीं न? याद है, तुम्हें, वहाँ गर्म–गर्म रोटी कौन बना रहा था? याद आया?

सीमा– (कुछ हैरान लेकिन उत्साहित होकर) – दाढ़ी वाले अंकल।

चाचा–तो अंकल कौन हुए? आदमी या औरत?

सीमा– आदमी।

चाचा–तो सीमा, यह बात ग़लत हुई न कि आदमी लोग रोटी नहीं बनाते?

सीमा–जी चाचा, मैं समझ गयी आपकी बात।

चाचा–बहुत बढ़िया। मेरी बेटी बहुत समझदार है। अब मैं तुमसे दूसरी बात पूछता हूँ। अगर मैं पापा के बजाय मम्मी का पैसा गोल–गोल कहूँ तो?

सीमा–(थोड़ी देर चुप रह कर)– चाचा, मम्मी लोग तो पैसा नहीं कमातीं। पापा लोग लाते हैं पैसा।

चाचा–क्यों, ऐसा कौन कहता है?

सीमा–चाचा, आप ख़ुद ही देखिए। मेरी मम्मी तो घर में रहती हैं। पापा ही पैसा कमाने के लिए ऑफ़िस जाते हैं।

चाचा–चलो माना, तुम्हारी मम्मी घर में रहती हैं। लेकिन वो जो घर का इतना काम करती हैं उसे करने के लिए अगर कोई पैसा दे के रखा जाए तो कितना पैसा ख़र्च हो जाएगा? मम्मी के काम से वह पैसा बचा तो कमाई हो गई न? फिर हमारे आस–पास तो कई लोगों की मम्मियाँ हैं जो पापा की तरह ही पैसा कमा कर लाती हैं। अपनी चाची को देखो। और हाँ, अपनी दोस्त सलमा, जॉन और सतीश की मम्मी को देखो। वो पैसा कमाने के लिए कुछ न कुछ करतीं हैं न?

सीमा–हाँ चाचा। यह तो मैंने सोचा ही नहीं था।

चाचा–तो समझ गयी न तुम मेरी बात?

सीमा–हाँ, मैं समझ गयी। बहुत अच्छे से समझ गयी।

चाचा–सीमा, तुम्हारे गीत का अब क्या होगा?

सीमा–बताऊँ चाचा? अब मैं गाऊँगी :

मम्मी की रोटी गोल–गोल

पापा की रोटी गोल–गोल

पापा का पैसा गोल–गोल

मम्मी का पैसा गोल–गोल

सूरज गोल चन्दा गोल

पूरी दुनिया गोल–गोल

भैया-दीदी

मेरे भैया बड़े सयाने, दीदी बड़ी सुजान
दोनों करते ख़ूब बहस, सुन बढ़ता मेरा ज्ञान

दीदी बड़ी खिलाड़ी मेरी, भैया को न भाये खेल
भैया हरदम होते फ़ाउल,
दीदी करे गोल पर गोल

भैया मेरे कलाकार हैं, सुन्दर चित्र बनायें
दीदी का मन लगे गणित में,
झट सवाल सुलझायें

चौके में दोनों मिल के जब करते हैं हुड़दंग
अम्मा–बाबा चीख़–चीख़ के हो जाते हैं तंग

भैया के भरवाँ बैगन, दीदी की खीर मखान
खा के करते वाह–वाह वो हो–हो कर हैरान

बेटे का सवाल

माँ मुझको भी है लगता डर,
क्यों हँसते हैं फिर सब मुझ पर

मुन्नी भी तो डरती है, फिर
क्यों न हँसते हैं सब उस पर

क्यों बच्चों में बँटवारा माँ
मुझको ये समझा दे माँ

गुड़ियों–गुड्डों से खेलूँ जब
कहते मुझको क्यों लड़की सब

मुन्नी खेले फुटबाल–क्रिकेट
क्यों कहते उसको लड़का तब

क्यों बच्चों में बँटवारा माँ
मुझको ये समझा दे माँ

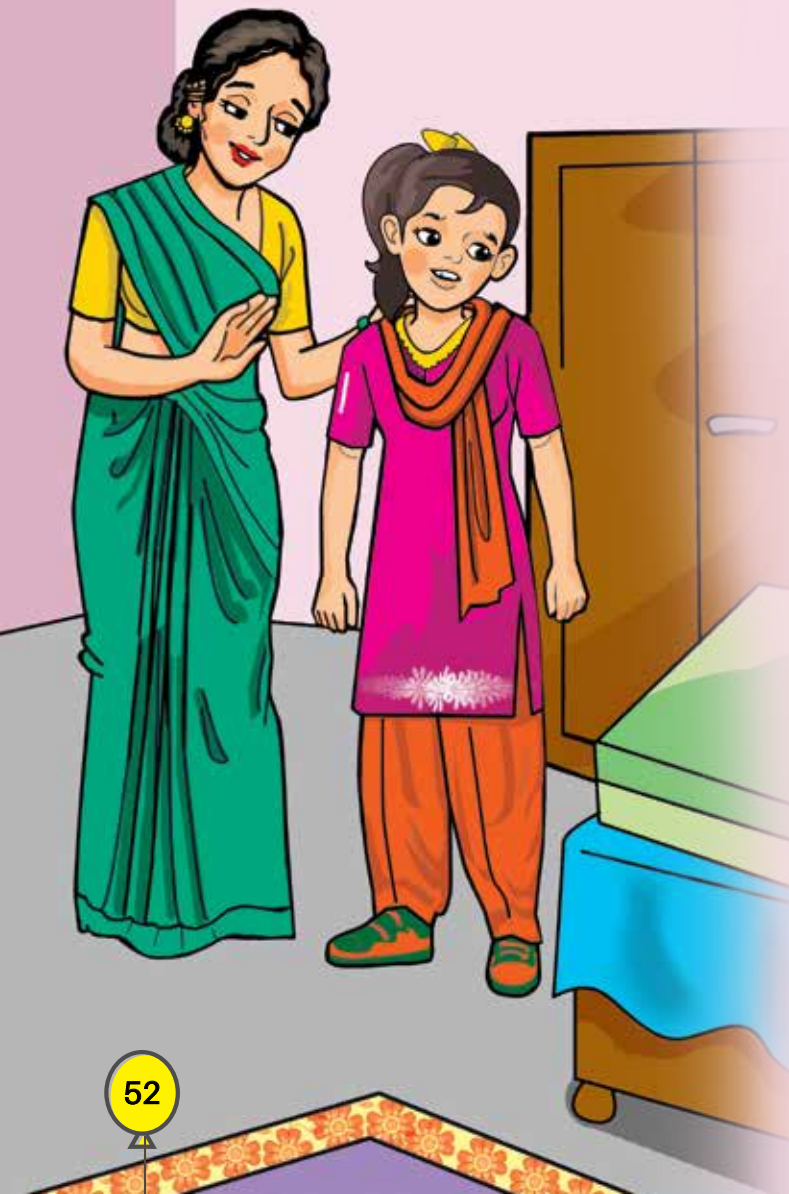

ताक़त

सितारा ने जैसे ही अपना सूटकेस उठा कर अलमारी पर रखने की कोशिश की, पीछे से अचानक माँ की आवाज़ आई, "अरे, तू ये क्या कर रही है? इतना भारी सूटकेस तू उठा कर रखेगी? अरे जा, जाकर भाई को बुला ले, वह रख देगा। तुझसे ये नहीं होगा।"

सितारा ने ताज्जुब से माँ की तरफ़ देखा और पूछा "माँ, मुझसे क्यों नहीं होगा?" माँ ने कहा, "तू लड़की है। तुझ में उतनी ताक़त नहीं है कि तू सामान उठा ले। इसलिये कहती हूँ, भाई को बुला ले।" सितारा सोच में डूब गई और माँ से पूछा, "लड़कियों में ताक़त क्यों नहीं होती है? मैं तो कोई कमज़ोरी महसूस नहीं करती।" माँ ने झुँझलाते हुए कहा, "हाँ, हम औरतें ताक़तवर नहीं होती हैं। अब जा, ज़्यादा बहस न कर, मुझे काम करने दे।"

सितारा कई अनगिनत सवाल लिये अपनी किताबें लेकर छत पर चली गई और एक कोने में बैठ कर किताब के पन्ने पलटने लगी।

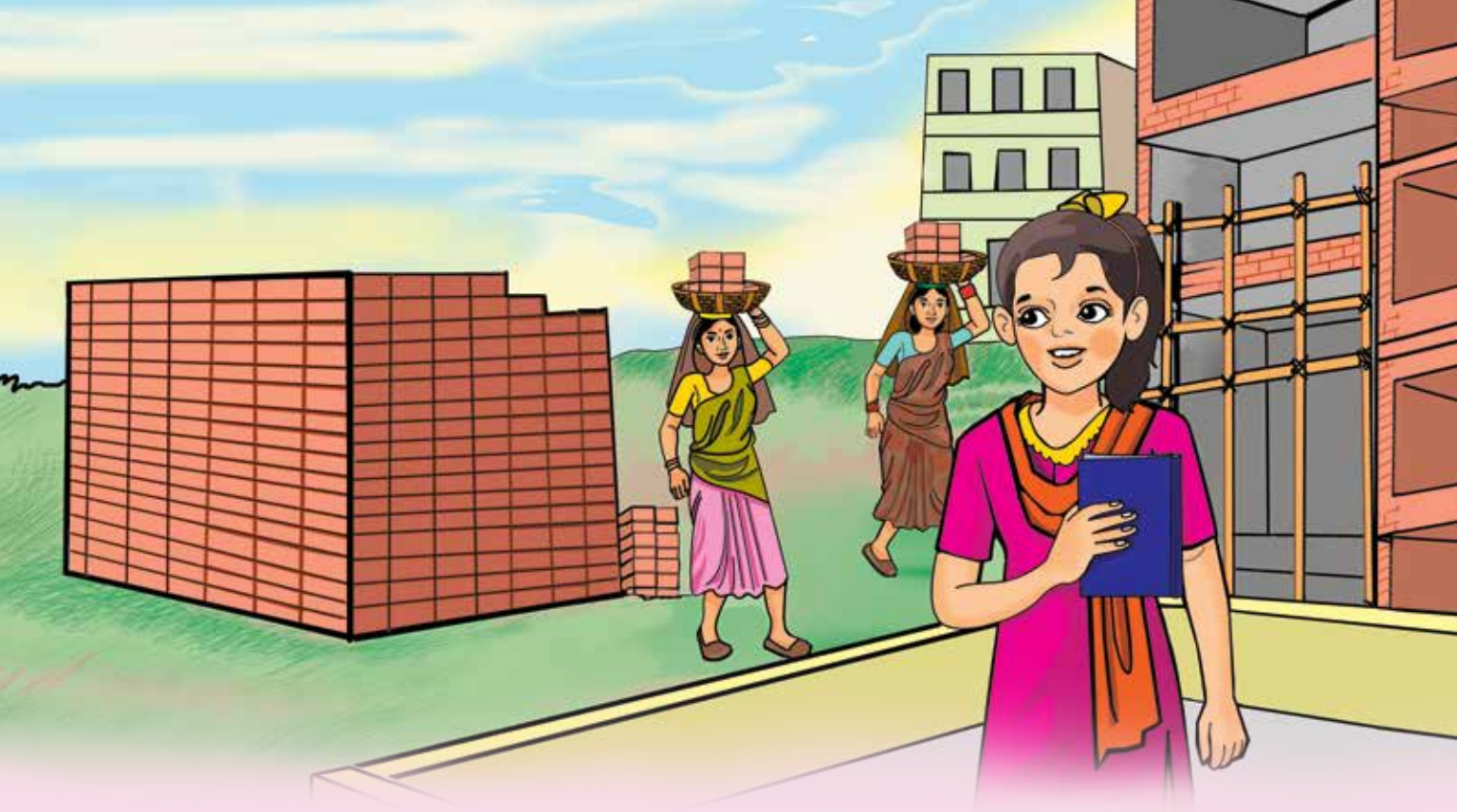

वह अपने अन्दर की उथल–पुथल को शान्त करने की कोशिश कर रही थी।

अचानक उसकी नज़र सामने बन रही एक इमारत पर पड़ी। उसने देखा कि एक मज़दूरिन ईंटों का भारी गट्ठर अपने सिर पर उठाए तिमंज़िले तक चढ़ती जा रही है। सितारा हैरानी से उसे एकटक देखती रही और उसे लगा कि उसके सवाल का जवाब शायद उसे मिल गया है। उसे लगा शायद वे तमाम बातें जो उसे बचपन से अभी तक सिखायी गयीं कि वह लड़की होने के कारण उस तरह की इन्सान नहीं है जैसा कि उसका भाई है और भाई उस तरह का इन्सान नहीं है जिस तरह की वह है, सच नहीं हैं। शायद ये सब बनायी हुई बातें हैं और सितारा ने तय किया कि वह अभी तक बतायी गयी ऐसी हर एक बात पर सवाल उठायेगी और असलियत का पता लगायेगी।

बच्चों का फ़रमान

अम्माँ मेरी ऊन ख़रीदें
और ख़रीदें बर्तन–कपड़े

घर में पेंट का रंग हो कैसा
अम्माँ चाहें होता वैसा

कटहल का अचार बनेगा
या फिर नींबू का इस बार

अम्माँ तय करती हैं जो भी
होता वही साल दर साल

लेकिन जब हो खेत की बारी
पापा–चाचा सब पे भारी

कहाँ ख़रीदें नया मकान
अम्माँ को कुछ नहीं है ज्ञान

अन्दर घर की चारदीवारी
में अम्माँ की दुनिया सारी

हम बच्चों का है अरमान
और हमारा ये फ़रमान

घर–बाहर दोनों की बात
अब हो साझी सारी बात

बात की चोट

पात्र - परिचय

रीना – गृहिणी
अमित – रीना का पति
बन्टी – रीना–अमित का बेटा
दीदी – रीना की बड़ी बहन
दीपू – दीदी का बेटा
मारिया – रीना की घनिष्ठ सहेली
डेविड – मारिया का पति

(रीना सो रही है। दरवाज़े की घन्टी बजती है। रीना हड़बड़ा कर उठती है और दरवाज़ा खोलती है। सामने मारिया खड़ी है)

रीना – अरे मारिया तुम! आओ, अन्दर आओ, बैठो।

मारिया – (बैठते वक़्त रीना के चेहरे पर नज़र डालते हुए) तबियत तो ठीक है न तुम्हारी ? चेहरे पर सूजन लग रही है।

रीना – (टालते हुए) कुछ ख़ास नहीं, हल्का बुख़ार है। शाम तक ठीक हो जाएगा। तुम बताओ, आज इधर कैसे आना हुआ ?

मारिया – बस, घर का कुछ सामान लेने निकली थी। सोचा, बहुत दिनों से तुमसे मुलाक़ात नहीं हुई है। इसीलिए चली आयी।

रीना – तुम थोड़ी देर बैठो, मैं चाय बना कर लाती हूँ। तब दोनों आराम से बातें करते हैं।(रीना चाय बना कर लाती है। दोनों चाय पी रही हैं)।

मरिया – रीना, क्या बात है ? सब ठीक तो है न ?

रीना – (मारिया की बात टालते हुए) अरे कुछ नहीं। बस, वही रोज़ के मसले हैं। तुम अपनी सुनाओ। अमित बता रहे थे कि पिछले दिनों तुम लोग कहीं घूमने गए थे।

मारिया – हाँ, पिछले महीने हम लोग अजमेर गए थे। डेविड को नई–नई जगहों पर घूमने का शौक़ है।
(तभी दरवाज़े की घन्टी बजती है। रीना उठ कर दरवाज़ा खोलती है। सामने रीना की बड़ी बहन खड़ी है)

रीना – अरे दीदी! आओ, अन्दर आओ, बैठो।
(दीदी आ कर बैठ जाती है)

दीदी – क्या बातें चल रहीं थीं यहाँ ?

रीना – मारिया भी अभी–अभी ही आयी है। बस, एक–दूसरे का हालचाल पूछ रहे थे। अच्छा हुआ तुम आ गयी, तुमसे मिलने का मन भी हो रहा था।

दीदी – ससुर जी की फ़रमाइश थी कि जाड़ा आने वाला है, नया स्वेटर चाहिए। ऊन लेने निकली थी। सोचा, ज़रा देर तुम्हारे पास हो लूँ। (रीना के चेहरे पर नज़र डालते हुए) क्या बात है रीना ? रोयी हो क्या ? चेहरा उतरा हुआ है।

मारिया – यही तो मैं भी पूछ रही थी रीना से।

रीना – अरे कुछ ख़ास नहीं। आज सब्ज़ी में नमक डालना भूल गयी थी। अमित खाना खाने बैठे तो नाराज़ हो गये और खाना खाये बिना ही चले गये। (रीना की आँखें भर आईं)

दीदी – रीना, तुम भी न! छोटी–छोटी बातों पर मुँह फुला लेती हो। अमित कभी दो बातें

कह भी देता है तो इसमें इतना बुरा मानने वाली कौन सी बात है ? मर्द जात है, क्या इतना भी न बोले ?

रीना – पर दीदी हम भी आख़िर कितना सुनें ? एक बार, दो बार की बात हो तो चुपचाप सह भी लें। अमित का स्वभाव तो ऐसा है कि ज़रा सा भी इनके मन का न हो तो अपना आपा खो देते हैं। क्या कुछ तो नहीं कह जाते। कहते हैं, "तुमको आता ही क्या है ? समीर की बीवी को देखो, इतना अच्छा खाना बनाती है कि उसके टिफ़िन खोलते ही दिल खुश हो जाता है। रोज़ नयी–नयी डिशें भी बना कर देती है। तुमसे तो कुछ होता ही नहीं। केवल दो वक़्त का खाना बनाना पड़ता है। उसका भी सलीक़ा नहीं तुमको।" यह सब बातें भी तो तीर की तरह चुभती है। रीना की आवाज़ भरभरा गयी।

दीदी – रीना, तुम तो खुशक़िस्मत हो। तुम्हारे साथ मार–पीट नहीं होती। फिर भी तुम बात का बतंगड़ बनाये रहती हो। तुम्हारे जीजा तो जब–तब मेरे ऊपर हाथ उठा देते हैं। पर हमने कभी उफ़ नहीं किया, न ही पलट कर जवाब दिया। मर्द है, कभी–कभी हाथ उठ भी जाता है तो क्या हुआ ? प्यार भी तो करते हैं।

मारिया – आदमी चाहे हाथ उठाए या ज़बान चलाए, दर्द–तकलीफ़ तो उतनी ही होती है।

दीदी – हाँ, बेइज़्ज़ती तो महसूस होती ही है। हल्का सा हाथ ही मरोड़ देते हैं तो ज़िन्दगी बेकार लगने लगती है।

मारिया – डेविड इस मामले में बहुत अच्छे हैं। कभी हम लोगों की आपस में बहस होती है तो न तो वो मेरे ऊपर हाथ उठाते हैं न ही गाली–गलौज करते हैं। दिल को चोट पहुँचाने वाली भी कोई बात नहीं कहते।

रीना – हम जैसी औरतों का दिन तो कड़वी बातें सुनने में निकल जाता है। पर रात को उनको जब शरीर का सुख भोगना होता है तो मीठी–मीठी बातों पर उतर आते हैं। कई बार इच्छा न होते हुए भी उनकी बात माननी पड़ती है। जब चाहो हमारे शरीर को तोड़ो–मरोड़ो, जब चाहो मारो–पीटो। आख़िर ये कैसा रिश्ता है ?

दीदी – हम लोग कर भी क्या सकते हैं? मर्द तो स्वभाव से ही ऐसे होते हैं।

मारिया – सारे आदमी एक जैसे नहीं होते। अगर मर्दों का स्वभाव ही ऐसा होता तो डेविड भी मेरे साथ ग़लत व्यवहार करते। लेकिन ऐसा नहीं है। हम दोनों में तो प्यार के साथ आपसी समझ भी है। अपने पड़ोसी सुधीर जी को ही देख लो। उनके यहाँ से लड़ाई–झगड़े की आवाज़ कभी नहीं आती। सीमा का किसी दिन खाना बनाने का मन नहीं करता तो वो बाहर से खाना पैक करवा कर ले आते हैं या खुद कुछ बना लेते हैं।

रीना – हाँ, यह बात तो है।

मारिया – किसी भी रिश्ते में पुरुष को यह हक़ नहीं हैं कि वह औरत को मारे–पीटे या हर समय उस पर अपनी मर्ज़ी थोपे। मर्दानगी का यह मतलब थोड़े ही है कि औरत को अपने से कमतर समझो, उसकी इज़्ज़त न करो ? उसकी भावनाओं की क़दर न करो। तुम अपने भाई को ही देख लो। भैया तुम्हारी भाभी की कितनी इज़्ज़त करते हैं। दोनों एक–दूसरे का कितना ध्यान रखते हैं। उनके घर में कितनी सुख–शान्ति है।
(दीदी और रीना सहमति में सिर हिलाती हैं)

दीदी – मारिया, तुम यह बात तो सही कह रही हो। रोज़–रोज़ की किचकिच से घर का माहौल बहुत ख़राब रहता है। साथ ही, बच्चे भी सहमे रहते हैं। जब भी ये मुझ पर हाथ उठाते या चिल्लाते हैं, मेरा दीपू रोने लगता है और मुझसे चिपक जाता है।

रीना – बन्टी तो रात में सोते–सोते चौंक जाता है। पढ़ाई में भी उसका दिल नहीं लगता। गुमसुम सा रहने लगता है। उसको नॉर्मल होने में बहुत वक़्त लगता है।

दीदी – दीपू तो अभी सात साल का ही है लेकिन कई बार उसके मन का काम न होने पर वह भी चिल्लाने लगता है। मुझे डर है कि कहीं वो भी अपने पिता जैसा ही न निकल जाए।

रीना – मैं अपने बन्टी को ऐसा बिल्कुल नहीं बनने दूँगी। मैं उसकी परवरिश इस तरह करूँगी कि वह अपनी पत्नी की खुशी और ग़म में बराबर का साझीदार बन सके। उसकी इच्छाओं का सम्मान करे। उसे अपने जीवन का साथी समझे।

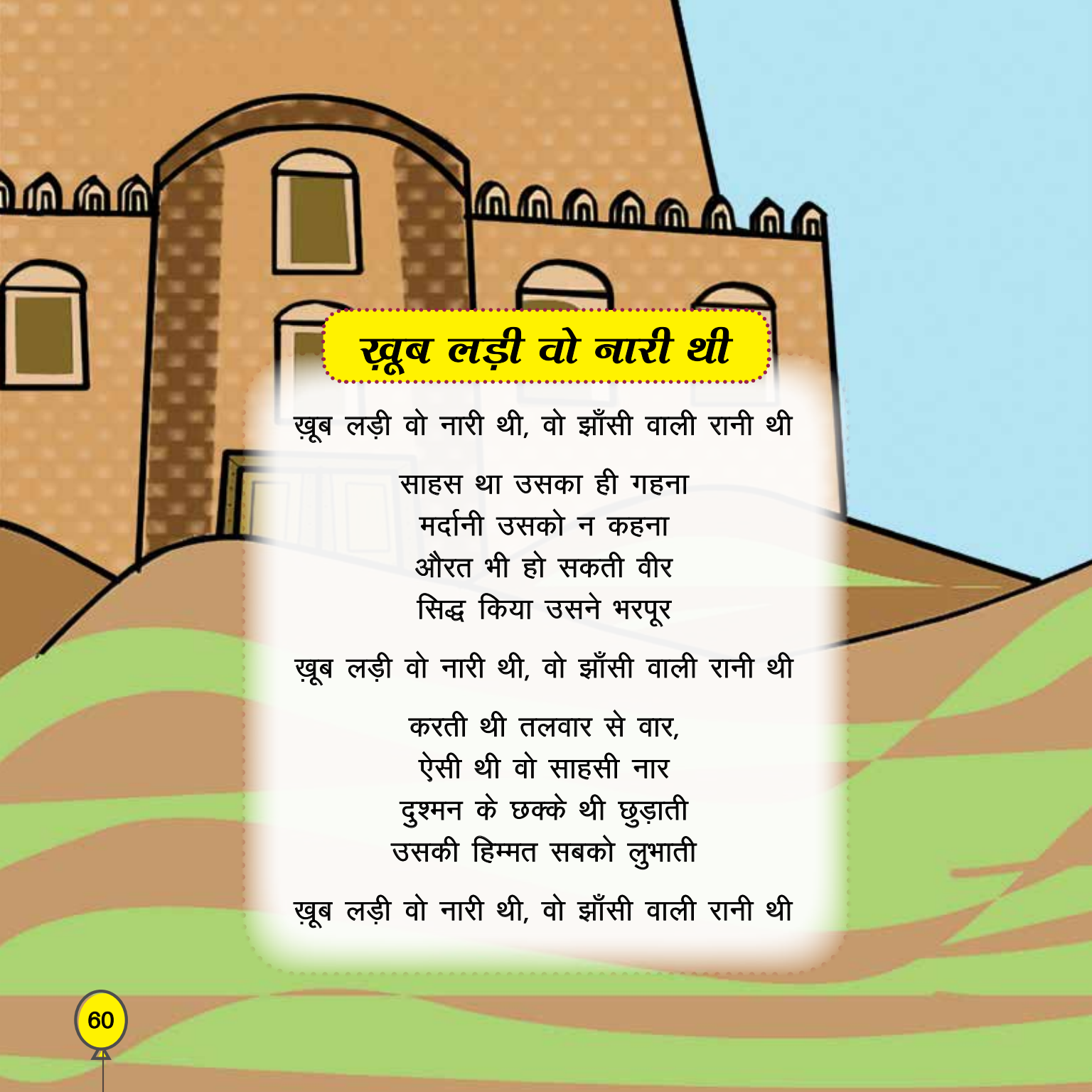

ख़ूब लड़ी वो नारी थी

ख़ूब लड़ी वो नारी थी, वो झाँसी वाली रानी थी

साहस था उसका ही गहना
मर्दानी उसको न कहना
औरत भी हो सकती वीर
सिद्ध किया उसने भरपूर

ख़ूब लड़ी वो नारी थी, वो झाँसी वाली रानी थी

करती थी तलवार से वार,
ऐसी थी वो साहसी नार
दुश्मन के छक्के थी छुड़ाती
उसकी हिम्मत सबको लुभाती

ख़ूब लड़ी वो नारी थी, वो झाँसी वाली रानी थी

अपंगता की हार

राजेश और अमिता के घर बेटी पैदा हुयी। उन्होंने बेटी का नाम रखा खुशबू। राजेश के माता–पिता बेटी पैदा होने पर बहुत खुश नहीं थे क्योंकि वह राजेश के पहले बच्चे के रूप में लड़का ही चाह रहे थे। लेकिन राजेश और अमिता पहली बार पिता और माँ बन कर बहुत खुश थे। वे दोनों ही इस अवसर को धूमधाम से मनाना चाह रहे थे। लेकिन खुशबू के दादा और दादी का कहना था कि लड़की तो पराया धन होती है। उसे पालना–पोसना तो दूसरे की बगिया को सींचने जैसा होता है। भला इसमें इतना खुश होने की क्या ज़रूरत? खुशबू के नाना–नानी ने सुना तो वो बोले, "लड़की पैदा होने पर समारोह करने की बात

तो कभी नहीं सुनी। ठीक है, अब पैदा हो ही गयी है तो पाल–पोस लो। लेकिन धूमधाम से रस्मों–रिवाज करने में फ़िज़ूल–ख़र्ची करने की क्या ज़रूरत है? अरे, लड़की जात के साथ सैकड़ों तो झंझट हैं, शादी–ब्याह, दहेज। अभी से पैसा बचाना पड़ेगा। राजेश और अमिता को अपना मन मार कर चुप होना पड़ा और घर की बिटिया कुछ प्यार और कुछ तिरस्कार के बीच पलती–बढ़ती रही।

अब वो आठवीं क्लास में थी। वो स्कूल पैदल जाती थी। घर से स्कूल जाने में ज़्यादा नहीं, बस 15 या 20 मिनट लगते थे। एक दिन जब वो स्कूल जा रही थी, चौराहे के पास एक गाड़ी दूसरी गाड़ी से पहले निकल जाने की कोशिश में फुटपाथ पर आ गई और खुशबू को टक्कर मारते हुए निकल गई। खुशबू लहूलुहान हो गई और दर्द से चीख़ने लगी। आस–पास बहुत से लोग इकट्ठे हो गये।

उनमें से एक ने उसे पहचान लिया कि यह तो राजेश की बेटी है और उसे उसके घर पहुँचाया।

घायल हालत में ख़ुशबू को देख कर घर में रोना–पीटना शुरू हो गया। राजेश अभी दफ़्तर के लिए नहीं निकला था। तैयार हो ही रहा था। जल्दी से राजेश, अमिता और मुहल्ले के लोगों ने मिल कर ख़ुशबू को अस्पताल पहुँचाया। डॉक्टर ने जाँच कर के बताया कि ख़ुशबू का एक पैर गाड़ी से बुरी तरह कुचल चुका है और उसका आधा पैर काटना ज़रूरी है। यह सुन कर सभी के होश उड़ गए। सभी के मुँह से निकला, "लड़की और अपंग? अब क्या होगा?" राजेश ने कई डॉक्टरों को रिपोर्ट दिखायी और सलाह ली। सभी ने पैर कटवाना ज़रूरी बताया। मजबूरी थी। ख़ुशबू के एक पैर का आधा हिस्सा काटना पड़ा। लम्बा इलाज चला। लखनऊ के आर्टिफ़िशियल लिम्ब सेन्टर में ला कर उसके लिए नकली पैर बनवाया गया और उसे इस्तेमाल करने और उसे लगा कर चलने–बैठने की प्रैक्टिस भी करायी गयी। एक साल के अन्दर वह अपने पैर की आदी हो गई और फिर से पढ़ने में मन लगाने लगी। लेकिन इस हादसे के साथ ख़ुशबू के जीवन में बहुत परिवर्तन आ गया। दुर्घटना के बाद से अब तक लगातार जिस तरह की बातें उसने सुनी और जिस तरह का व्यवहार झेला, उससे उसे अपनी ज़िन्दगी बोझ लगने लगी थी। घर में स्थायी निर्जीविता छा गई थी। वातावरण अफ़सोस व चिन्ता से तर–बतर रहता था। हर समय दादा–दादी, मम्मी–पापा और आने जाने वाले सभी रिश्तेदार और पड़ोसी यही कहते थे, हाय, लड़की और अपंग! अब कौन इससे शादी करेगा? शादी नहीं होगी तो कैसे ज़िन्दगी गुज़ारेगी?"

तिरस्कार से वह अनभिज्ञ नहीं थी। अनचाही पोती जो थी। लेकिन अब वह तिरस्कार इस तरह की एक भावना के साथ मिल गया था मानो उससे उसके परिवारजन और घर में आने–जाने वाले लोग लगातार कह रहे हों कि ख़ुशबू तेरी ज़िन्दगी बेकार है, नाकारा है। अब तेरे सारे रास्ते बन्द हैं और तेरी ज़िन्दगी में रोशनी की एक भी किरण प्रवेश नहीं कर सकती। पहले उसे कभी ख़ालिस प्यार मिलता था जब माँ उसे चिपटाती थी और कभी ख़ालिस तिरस्कार जब दादा–दादी,

हर चीज़ में उसके भाई को ज़्यादा महत्व देते थे और उसकी छोटी–छोटी इच्छाओं को भी कह कर दबाते थे कि उसे दूसरे घर जाना है और इसलिए उसे अपनी इच्छाओं को दबाना सीखना चाहिए।

दूसरे घर की बात से खुशबू को बड़ा डर लगने लगता था। यह घर छोड़ना उसे दुनिया ही छोड़ना जैसा लगता था। लेकिन दुर्घटना होने के बाद से उसे न तो शुद्ध प्यार ही कभी मिल पाया और ने ही शुद्ध तिरस्कार। प्यार और तिरस्कार में हमेशा दया और घोर निराशा के अहसास मिले रहते थे। स्कूल में भी लोगों का व्यवहार काफ़ी बदल गया था। उसे बेचारी समझ कर उसे बेवज़ह ही सहारा देने की कोशिश उसके सहपाठी करते या टीचर ज़्यादा

ध्यान देते तो उसे शरीर से ही नहीं, मन से भी अपंग होने का अहसास होने लगता था।

धीरे–धीरे खुशबू गहरे अवसाद और अनजाने डर से घिरती चली गई। उसे लगता था मानो उसे किसी घने अँधेरे कमरे में हाथ–पाँव बाँध कर बन्द कर दिया गया हो और उसे पूरी ज़िन्दगी वहीं बितानी हो।

एक दिन खुशबू की हिन्दी टीचर ने क्लास के सभी विद्यार्थियों को इस विषय पर एक निबन्ध लिखने को दिया कि वे बड़े हो कर क्या बनना चाहते हैं। खुशबू ने निबन्ध में सिर्फ़ एक लाइन लिखी– 'मैं कुछ नहीं बन सकती क्योंकि मैं अपंग हूँ' और बाक़ी पूरा पेज काले रंग से रंग दिया। टीचर को यह पढ़ कर बहुत दुःख हुआ और उन्होंने अगले दिन खुशबू को एक किताब पढ़ने को दी जिसमें बहुत से ऐसे लड़कों और लड़कियों की कहानियाँ थीं जो शारीरिक या मानसिक रूप से सामान्य कहलाने वाले इन्सानों से किसी न किसी रूप में फ़र्क़ थे और जिन्होंने ऐसे कारनामे किये कि वे दुनिया भर में मशहूर हो गये। उसने ऐसे आदमियों और औरतों के बारे में पढ़ा जो पैरों के बिना ही पहाड़ों पर चढ़ गयी। ऐसी लड़कियों के बारे में पढ़ा जो दोनों पैर नकली होने के बावजूद मशहूर डांसर बनीं। उस किताब में ऐसे खिलाड़ियों, वैज्ञानिकों, कलाकारों आदि के बारे में सच्ची कहानियाँ थीं जिन्होंने अपने हौसलों से अपनी शारीरिक–मानसिक कमी को जीता और सामान्य कहलाने वाले करोड़ों लोगों से कहीं ज़्यादा कठिन काम कर दिखाए। इनमें कई लड़कियाँ भी थीं।

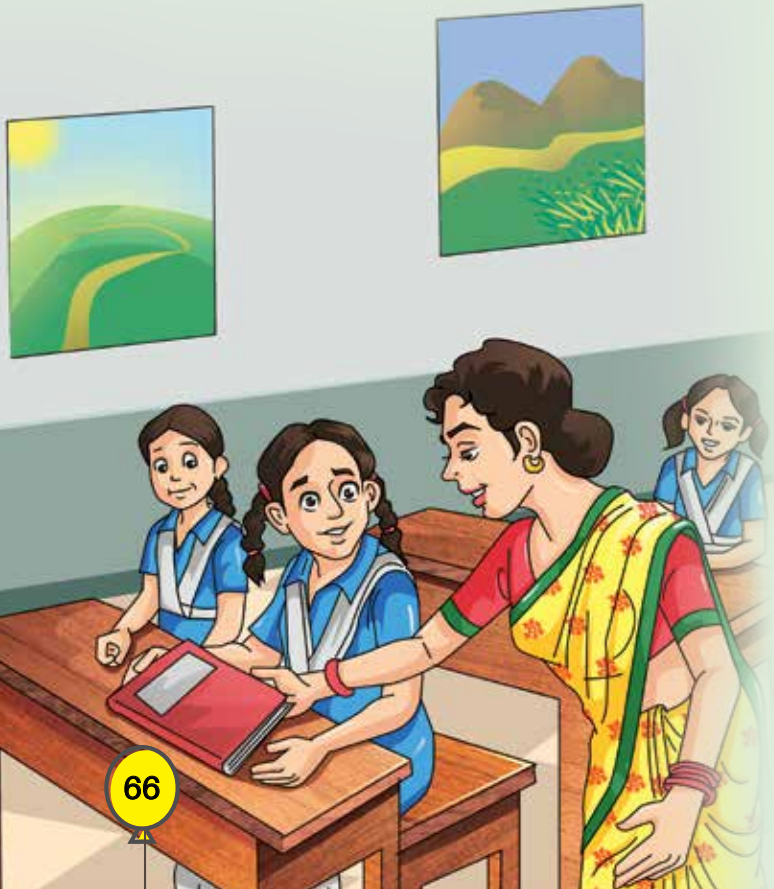

जैसे–जैसे खुशबू यह किताब पढ़ती गई, उसे लगा मानो उसके बन्द कमरे में किसी सूराख़ से रौशनी की एक पतली किरण अन्दर आयी और धीरे–धीरे चौड़ी होती गयी। जब उसने किताब ख़त्म की तो उसके मन के कमरे में उजाला भर चुका था। वह यह पहले ही समझ चुकी थी कि समाज की नज़र में वो सिर्फ़ तभी अपंग नहीं थी जब उसका आधा पैर काटना पड़ा बल्कि तभी से, जब वह लड़की बन कर पैदा हुई थी। लोगों ने उसे हमेशा दोहरी अपंगता का अहसास दिलाया। लेकिन अब उसने तय किया कि वह यह साबित करेगी कि वह ज़िन्दगी से हारी हुई लड़की नहीं बल्कि तमाम सम्भावनाओं से भरपूर लड़की है और लड़की होने के साथ–साथ कमाल की इन्सान है। खुशबू आज एक मशहूर फुटबॉल खिलाड़ी है। वह सामान्य टीमों के साथ बराबरी से खेलती है और बहुत बार जीतती भी है।

डर

हम और आप यदि सोचते हैं
कि छूट गया है स्त्री से डर,
झाड़ लिया है डर से पल्ला
तो ये झूठ है।

अभी भी सुरक्षा और असुरक्षा के बीच
आगे आने और पीछे जाने के बीच
द्वन्द हैं स्त्री में!

एक स्त्री के जन्म का इतिहास
अभी भी है डर
परिवार में लड़की की
पैदाइश का डर,

गर्भवती को कन्या जन्म का डर
डर से शुरू होता है उसका बचपन
उपदेश, बात व्यवहार
आरम्भ हो जाती है प्रारम्भिक शिक्षा :

डर!
पढ़ने जाती,
नौकरी करती,
सपने देखती,
बीच–बीच में डरती
आगे बढ़ती हुई

डर तो उसे ही है न आख़िर!

एक लड़की : एक स्त्री
दहेज–हत्या, भ्रूण–हत्या,
अपहरण और बलात्कार
छोटी वयस हो या बड़ी
सुरक्षा की गारण्टी है क्या
बाहर या भीतर?

अख़बार की ख़बरें, मीडिया और चर्चे
डराते हैं उसे।
कामकाजी हो या घरेलू,
ऑफ़िसर हो या गृहिणी,
डर से बच कर रह पाना
कितना मुश्किल है!
चाहती है हर स्त्री
डर से हट कर
जीना–बढ़ना
बढ़ते रहना

ऐसे समाज की कब होगी संरचना?
हर हाल में काटनी होगी
इस डर की धार
स्त्री को!

घर

खेल–खेल में हम बनाते थे एक घर
बचपन में
जो हमारा घर नहीं हो पाया।

बड़े होकर हम बनाते हैं फिर घर
एक घर, दो घर, तीन घर, चार घर

बल्कि चार नहीं हज़ारों घर
पर कोई घर नहीं मिलता अपना–सा

जिन घरों में हमें फेंका जाता है
और हम टूट जाते हैं दीवारों से
टकराकर बर्तनों की तरह

वो तो क़तई हमारे घर नहीं होते।

जिन घरों में हमारे सपने धूल हो जाते हैं
और मिट्टी के टूटे चूल्हों की तरह

जलाये जाने के इन्तज़ार में
जागती रहती हैं जीवन भर

क्या उन घरों को सचमुच कहा
जा सकता है घर?

अस्तित्व

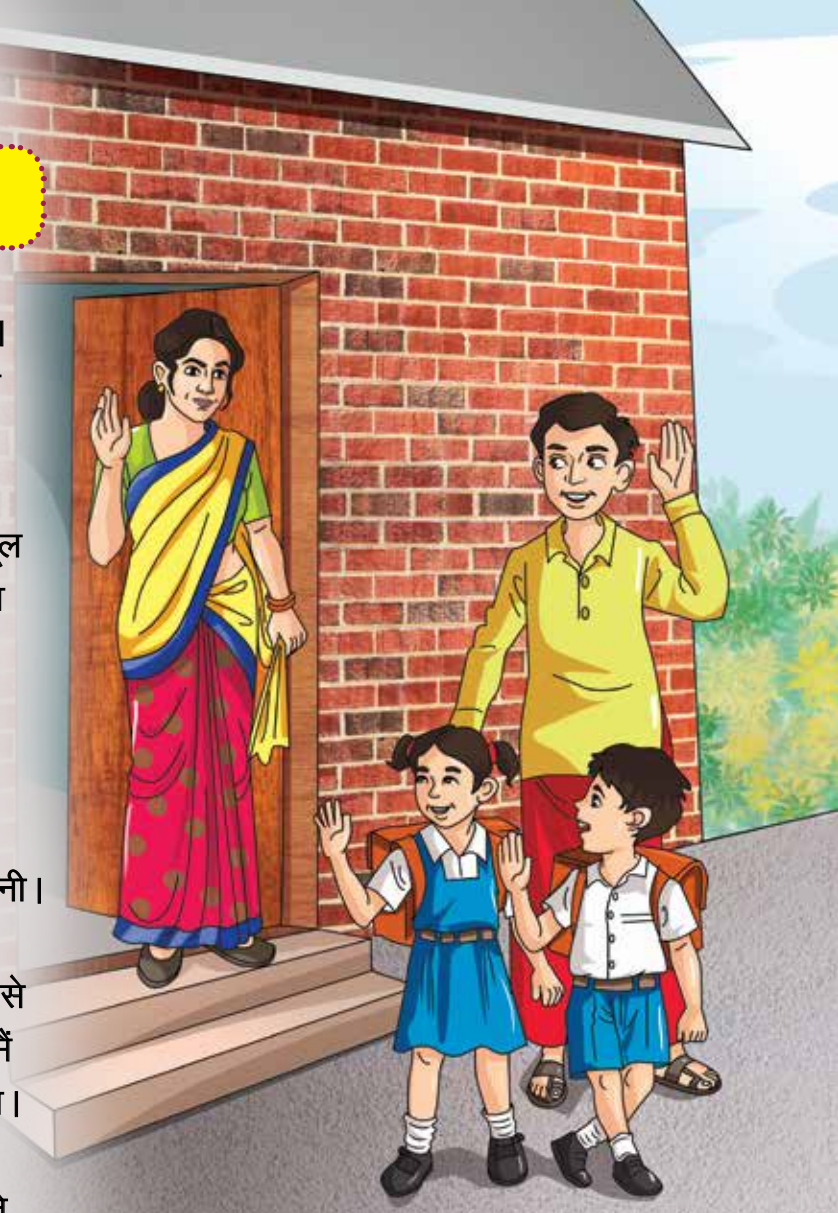

हर सुबह की तरह आज भी सूरज निकला। चिड़ियों ने भी अपने चहचहाने की रस्म पूरी की। शायद सब कुछ ही तो रोज़ की तरह हुआ। मेरा सुबह जल्दी उठना, राकेश और बच्चों के लिए नाश्ता बनाना, बच्चों को स्कूल के लिए तैयार करके भेजना और हाँ, राकेश को एक मीठी मुस्कान के साथ ऑफ़िस के लिए विदा करना। सब कुछ तो रोज़ जैसा ही है।

लेकिन सिर्फ़ एक ही चीज़ ऐसी है जो रोज़ की तरह नहीं है। वो है—मेरे अन्दर की बेचैनी। ऐसा नहीं है कि इस बेचैनी का आज नया जन्म हुआ मेरे अन्दर, बल्कि यह तो सालों से ही मेरे वजूद का हिस्सा बनी हुई है जिसे मैं अपनी खोखली दलीलों से शान्त करती रही। लेकिन आज तो इसे उन दलीलों की भी दरकार नहीं। वैसे, इस बेचैनी का ज़िक्र मैंने कई ख़ास दोस्तों से भी किया। लेकिन पता

नहीं क्यों सबको मेरे अन्दर की यह बेचैनी बेवजह लगती है। हर कोई इसे समझने के बजाय मुझे ही ख़ुश रहने की नसीहत देता है। और दे भी क्यों न?

क्योंकि मेरे पास तो सभी साज़ो–सामान हैं जिन्हें एक लड़की के लिए काफ़ी माना जाता है। पति, बच्चे और अच्छा घर–बार। लेकिन यह भी ज़रूरी नहीं कि दुनिया जिस तराज़ू में एक लड़की की ख़ुशियों को तौलती है वो ख़ुद लड़की के लिए मुनासिब और फ़ायदेमन्द हो। अक्सर लड़की के बारे में लोग रोटी, कपड़ा, मकान के आगे नहीं सोच पाते हैं। ख़ासकर उसके वजूद और उसकी पहचान की तो कहीं गिनती ही नहीं होती। शायद यही वजह है कि मेरी बेचैनी की वजह सभी को बेवजह लगती है।

आज भी मुझे वो दिन याद है, जब लगभग 15 साल पहले एम.बी.ए. में टॉप करने के बाद मेरे सपनों ने एक नयी उड़ान भरी थी। बहुत कुछ करने की उम्मीद के साथ कई जगह नौकरी की दरख़्वास्त लगायी थी। मेरे दोस्तों का मुझसे यही कहना था कि मेरा तो अच्छी जगह सलेक्शन हो ही जाएगा। मैं कहने को तो उन्हें जवाब में कहती थी "कहाँ यार" लेकिन मुझे पूरा भरोसा था कि मेरे लिए कई अच्छी नौकरियाँ इन्तज़ार में हैं। मुझे क्या पता था कि मेरे और मेरे मम्मी–पापा के सपने आपस में यूँ टकरा जाएँगे। जब मैंने मम्मी–पापा को बताया कि मेरा नौकरी का ऑफ़र लेटर आ गया है तो उनके चेहरे पर ख़ुशी के बजाय कोई दूसरा ही भाव था।

मम्मी ने कहा, "कहाँ नौकरी के चक्कर में पड़ रही हो! एक हफ़्ता पहले जो लड़के वाले देखने आए थे उन्होंने रिश्ते के लिए 'हाँ' कर दी है। उन्हें थोड़ा जल्दी है। दो महीने के बाद की शादी की तारीख़ चाहते हैं।" मैं बिल्कुल सन्न रह गई मानो किसी ने खुले आसमान में उड़ते वक़्त मेरे पंख काट कर मुझे ज़मीन पर लाकर पटक दिया हो। इसके बावजूद मैं कुछ कहने की हिम्मत जुटाते हुए बोली, "इतनी जल्दी क्या है शादी की? अभी तो मुझे अपना

कैरियर बनाना है।" पापा ने कुछ कहने के बजाय मम्मी की तरफ़ घूरा और आख़िरकार पापा का जवाब हमेशा की तरह मम्मी के शब्दों के ज़रिये मुझे मिल गया। मम्मी ने मुझे कुछ समझाते और कुछ डाँटते हुए कहा, "तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है! लड़की के लिए शादी ज़रूरी होती है या कैरियर? अच्छा पढ़ा–लिखा कमाऊ लड़का तुम्हें मिल रहा है और ऊपर से तुम इतरा रही हो! हम तुम्हारे माँ–बाप हैं। तुम्हारे हक़ में अच्छा ही करेंगे।" वैसे भी मुझे बहस करने की आदत नहीं थी या कहें कि एक लड़की होने के नाते यह हक़ कभी मिला ही नहीं था। बहरहाल, मुझे नौकरी नहीं बल्कि शादी को ही चुनना पड़ा। शादी के बाद मैंने राकेश को पति के रूप में अपनाया। उनकी फ़रमाइशें, उनके नख़रे, उनकी हर जायज़ व नाजायज़ बात सभी कुछ को अपना फ़र्ज़ समझ कर अपनाया। जायज़ बात जैसे कि मेरे माँ–बाप को अपने माँ–बाप की तरह मानो। नाजायज़ बात कि अपने मायके वालों से दूरी बना कर रखो। लेकिन इसके बदले में राकेश ने मेरी नौकरी करने की एक अदद ख़्वाहिश को भी ग़ैर ज़रूरी समझते हुए कभी भी इस पर बात न करने की चेतावनी दे डाली।

ख़ैर, यह बात तो पुरानी हो गई। आज मैं एक बीवी हूँ, माँ हूँ, बहू हूँ। मैं इन सब रिश्तों के क़रीब हूँ लेकिन शायद ख़ुद से ही दूर हो गई हूँ क्योंकि मैंने अपने सपनों के साथ धोखा किया या आप कह सकते हैं कि मुझे धोखा देने पर मज़बूर किया गया। कुछ बनने की चाहत, अपने लिए सपने सजाने की चाहत को दबाते–दबाते मैंने अपने अन्दर एक ऐसी लड़की को पैदा कर लिया जो सबके लिए जीती है लेकिन अपने लिए नहीं। उसकी मुस्कान दूसरों के लिए, दूसरों की खुशियों के लिए और उनकी कामयाबी के लिए होती है लेकिन अपने लिए यह मुस्कान आख़िरी बार तब आयी थी जब नौकरी के लिए ऑफ़र लेटर

मेरे हाथ में आया था। आज भी वही ऑफ़र लेटर मेरे हाथों में है। लेकिन अब उस मुस्कान की जगह इस बेचैनी ने ले ली जो बहुतों को बेवजह लगती है।

आप लोग सोच रहे होंगे कि यह सब मैं आप लोगों को क्यों बता रही हूँ? बस ऐसे ही, या फिर यूँ कहें कि मेरी इस बेचैनी को समझने वाले इन्सान की तलाश मुझे आप लोगों तक घसीट लायी।

फ़िलहाल यह आप पर है कि आप भी इस बेचैनी को ग़ैर ज़रूरी समझें या फिर इतनी घुटन आप को भी कहीं न कहीं बेचैन कर दे।

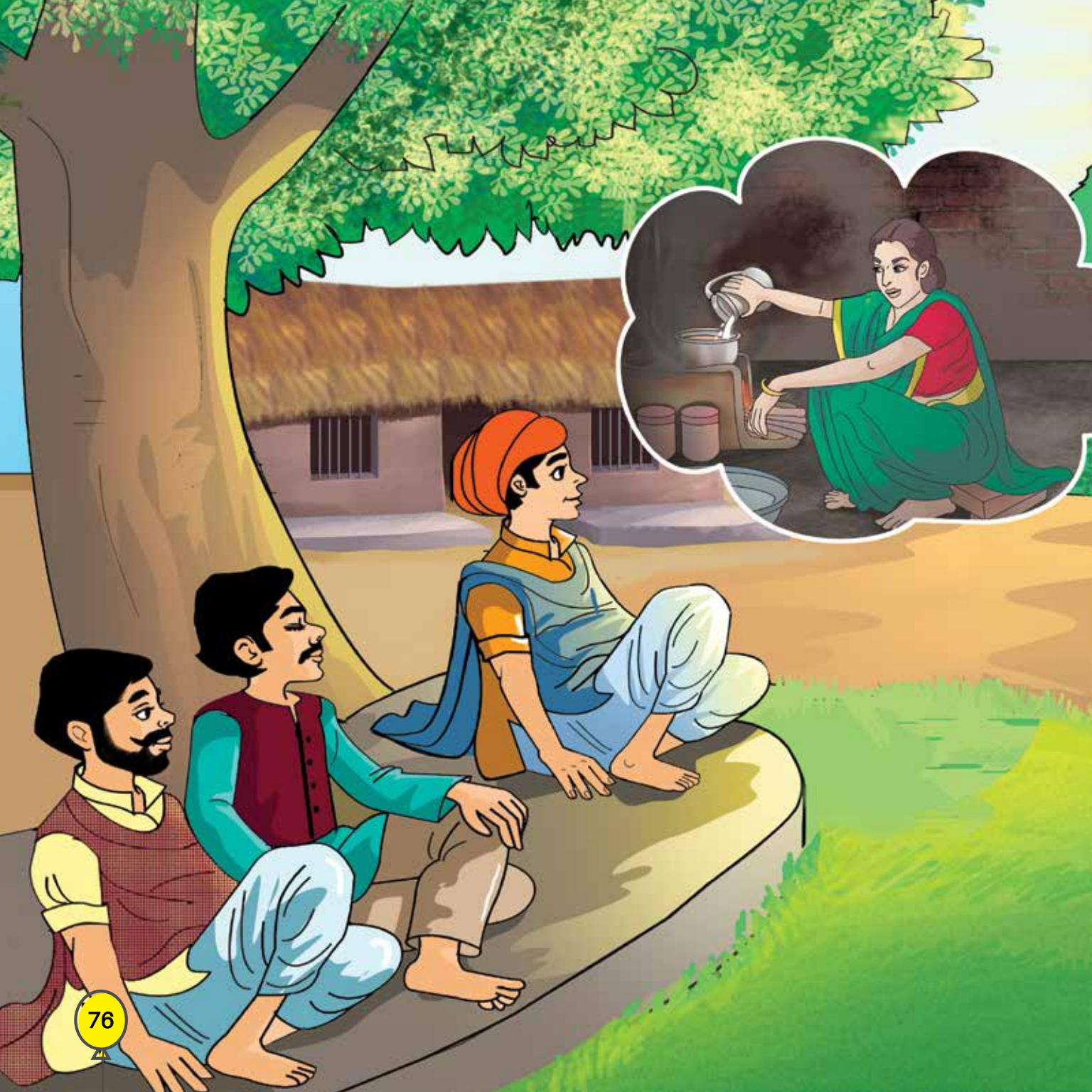

धूप किसकी

बहुत दिन बाद
निकली थी धूप

जाड़ा था सख़्त
जिसे देखो उसको
कँपकपी छूट रही थी

बच्चे, बूढ़े, जवान
सब भाग रहे थे
धूप की ओर

सर झुकाये था कोई
अकड़ा खड़ा था कोई
लेटे भी थे कुछ
बैठे भी तो कुछ

मर्द थे जितने धूप में
औरतें थीं कम धूप में

सोचो–सोचो फिर सोचो
क्यों कम थीं औरतें धूप में

वे घर बुहार रही थीं
पका रही थीं खाना
चाय बना रही थीं मर्दों के लिए

कथरी सी रही थीं
ताकि रात में कम लगे ठण्ड

भारत में महिला मताधिकार

आज के समय में हम यह सोच भी नहीं सकते कि किसी ज़माने में स्त्रियों के लिए मताधिकार की बात कितनी बड़ी बात थी, बल्कि यह एक सपना सरीखा था। इसके लिए यूरोप में महिलाओं ने वर्षों तक संघर्ष किया और पड़ाव–दर–पड़ाव इसे बहुत मुश्किल से हासिल किया। इसके लिए उन्हें लगभग 85 साल से भी ज़्यादा वक़्त तक इन्तज़ार करना पड़ा था किन्तु भारत में स्थिति उतनी विकट नहीं रही। यहाँ शुरू से ही पुरुषों के साथ–साथ ही महिलाओं को भी मत देने का हक़ हासिल हो गया था। भारत में जब सन् 1935 में सीमित मताधिकार का प्रावधान हुआ तो यह पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों को भी मिल गया। हालांकि इसके बावजूद यह नहीं कह सकते कि यहाँ मताधिकार को हासिल करने के लिए महिलाओं को कोई प्रयास ही नहीं करने पड़े।

भारत में महिलाओं के लिए मताधिकार का माँग पहली बार सन् 1917 में सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में कांग्रेसी महिलाओं के एक समूह द्वारा उठाई गई जिसमें मारग्रेट कज़िंस भी एक सदस्य के तौर पर शामिल थी। भारत के लिए नया संविधान बनने से पूर्व ब्रिटिश भारत के तत्कालीन सचिव ई.एस. मांटेग्यू सन् 1917 में जब भारत दौरे पर आए तो यहाँ की नारीवादी नेताओं और चिन्तकों ने इसे एक महत्वपूर्ण अवसर के रूप में लिया। 1 दिसम्बर 1917 (कुछ जगहों पर 18 दिसम्बर है) को 5 महिलाओं का एक प्रतिनिधि मण्डल मद्रास में मांटेग्यू तथा भारत के वायसरॉय चेम्सफ़ोर्ड से मिला तथा महिलाओं के लिए मताधिकार की माँग रखी। हालांकि मांटेग्यू–चेम्सफ़ोर्ड के सुझावों में मताधिकार को और विस्तृत करने का सुझाव भी शामिल था, किन्तु उसमें महिलाओं के मताधिकार का अलग से कोई उल्लेख नहीं था। इस शिष्ट मंडल की प्रमुख माँगें इस

प्रकार थीं – महिलाएँ सामान्य नागरिक मानी जाएँ, लिंग के आधार पर भेदभाव समाप्त हो, स्त्रियों को भी पुरुषों की तरह बराबर मताधिकार दिए जाएँ तंथा उनके लिए शिक्षा तथा सुरक्षा की सुविधाएँ बढ़ाई जाएँ।

आगे चलकर सन् 1918 में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने भी महिलाओं के मताधिकार का समर्थन किया। इसके बाद सन् 1919 में जब 'द गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया बिल' पेश हुआ तो एनी बेसेण्ट, सरोजिनी नायडू और हीराबाई ने महिलाओं के राजनीतिक अधिकार के पक्ष में अपने तथ्य रखे। उस समय इस मुद्दे को चुनी गई सरकारों के विवेक के ऊपर छोड़ दिया गया।

इस प्रस्ताव की पृष्ठभूमि में जाकर देखें तो मारग्रेट कज़िंस का नाम प्रमुखता से उभर कर आता है जो इस देश के सबसे पहले अखिल भारतीय महिला संगठन 'वीमेन्स इण्डियन एसोसिएशन' की संस्थापिका थी। इस संगठन के माध्यम से उन्होंने भारत में महिला मताधिकार की माँग को आगे बढ़ाने का काम किया।

सन् 1920 और 1921 में क्रमशः त्रावणकोर और मद्रास में महिलाओं के लिए सीमित मताधिकार दिए गए, जिसक प्रयोजन था – केवल शिक्षित महिलाओं को ही वोट देने का अधिकार प्रदान करना। इसके बाद दूसरे राज्यों ने भी इस दिशा में विचार करना प्रारम्भ किया। हालांकि बिहार शुरुआत में इसके प्रति नकारात्मक और अड़ियल रुख़ अपनाता रहा, किन्तु कई राज्यों के द्वारा इस क्षेत्र में पहल करने के बाद तथा महिलाओं द्वारा लगातार हो रहे आन्दोलन के दबाव में सन् 1929 में इसे बिहार विधानसभा में पारित कर दिया गया।

सन् 1918 के बाद महिला आन्दोलन कारियों द्वारा जगह–जगह पर सभाएँ की गईं तथा मताधिकार के प्रस्ताव पारित किए गए। जनवरी 1919 में पटना में भी 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' हुआ जिसमें बिहार की महिलाओं ने बाल–विवाह, दहेज प्रथा तथा मताधिकार के मुद्दे पर अपनी माँग दुहराई। उसी साल राजकिशोरी देवी ने मझवेलिया, लहेरिया सराय (दरभंगा) में 'बिहार महिला पीठ' की स्थापना की तथा सन् 1921 के राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भी बिहार की 8 महिलाओं ने हिस्सा लिया। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बिहार सरकार के अडियल रवैये के बावजूद वहाँ की महिलाओं ने मताधिकार के लिए लम्बे समय तक संघर्ष किया। यहाँ तक कि बिहार की काउंसिल में महिलाओं के वोट देने का प्रस्ताव तो गिर गया किन्तु उनका मत देने के अधिकार को लेकर संघर्ष अनवरत जारी रहा। अंततः सन् 1929 में जाकर बिहार और उड़ीसा की महिलाओं को वोट देने का अधिकार मिल सका। यह एक ऐसा अधिकार था जिसने महिलाओं के लिए राजनीति के क्षेत्र में अपनी जगह बनाना सुनिश्चित किया।

औपनिवेशिक भारत में सन् 1919 में इस समिति ने कई कानूनी सुधार किए जिसका कांग्रेस पार्टी ने समर्थन भी किया था। जब मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों को लागू किए जाने की बात उठी तो प्रान्तीय सरकारों को इस मुद्दे पर निर्णय लेने का अधिकार दिया गया। सबसे पहले मद्रास में महिलाओं को मताधिकार मिला। सन् 1926 में वहाँ महिलाओं को विधानसभा में भी प्रवेश मिला। डॉ.एस. मुत्थुलक्ष्मी पहली महिला विधायक बनीं।

लगातार हो रहे आन्दोलनों के दबाव में महिलाओं के मताधिकार की माँग को लेकर साउथबरो कमेटी की स्थापना की गई। इस जाँच कमेटी के अध्यक्ष श्री साउथबरो को बम्बई की 800 महिलाओं द्वारा ज्ञापन दिया गया। इसके बावजूद अप्रैल 1919 में साउथबरो कमेटी की जो रिपोर्ट आई उसमें महिलाओं का ज़िक्र तक न था। इतना ही नहीं, साउथबरो ने लन्दन में दोनों सदनों में 'ज्वायंट सेलेक्शन कमेटी' के सामने यह ग़ैरज़िम्मेदाराना बयान भी दिया कि भारत में स्त्रियों की ओर से अभी मताधिकार के लिए कोई माँग नहीं की गई है।

इसके बाद सन् 1931–32 में 'लॉर्ड लोथियन समिति' ने महिलाओं के मताधिकार पर अपनी एक रिपोर्ट सौंपी जिसमें भेदभाव किया गया था। उस रिपोर्ट में भेदभाव के 2 आधार बनाए गए। एक तो उन्हीं महिलाओं को वोट देने

का अधिकार दिया गया जो किसी भी भाषा में पढ़–लिख सकती हों। दूसरे, उनका किसी पुरुष का पत्नी होना अनिवार्य था। इस प्रावधान से विधवाएँ या अविवाहित महिलाएँ मताधिकार से वंचित कर दी जा रही थीं।

कांग्रेस नेतृत्व ने महिलाओं के मताधिकार की माँग को कई कारणों से स्वीकृति दी। पहला, महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व में बराबरी का स्थान न देने से जनतांत्रिक आधारों पर ज़्यादा स्वायत्तता और बाद में ब्रिटिश शासन से मुक्ति का राष्ट्रीय पक्ष कमज़ोर पड़ता था। दूसरे, गांधीवादी आन्दोलन में भारी संख्या में महिलाओं की भागीदारी के कारण उनकी राजनीतिक बराबरी की माँग को अस्वीकार करना कठिन था। सन् 1930 के 'नमक सत्याग्रह आन्दोलन' में जेल भेजे जाने वाले कुल 80,000 लोगों में 17,000 महिलाएँ थीं। तीसरे, महिलाओं को मताधिकार मिलने से सामाजिक ढाँचे को कोई ख़तरा नहीं देखा गया। इसके पीछे यह धारणा थी कि अव्वल तो महिलाएँ ज़्यादा संख्या में वोट डालेंगी ही नहीं और डालेंगी भी तो पति की मर्ज़ी से ही डालेंगी।

बहरहाल, कारण जो भी रहे हों, 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस महिला आन्दोलन' की महिलाओं के प्रतिनिधित्व में बराबरी की माँग मानने को वचनबद्ध हुई। कहा गया कि स्वतंत्र भारत में महिलाओं को काम का बराबर अधिकार, चुनाव में हिस्सा लेने और चुने जाने का अधिकार मिलेगा।

भारत के स्वाधीन होने से सरकारी प्रशासन तथा आर्थिक विकास की नई चुनौतियाँ सामने आईं। सन् 1948 में भारत का संविधान लिखने में महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों की चर्चा पर बजाय किसी उग्रसुधारवादी आधुनिक विचारधारा के असर के, इस बात का ज़्यादा असर पड़ा कि राष्ट्रीय आन्दोलन में भारी संख्या में उनकी भागीदारी रही थी। हमारे संविधान निर्माताओं, जाने–माने राजनीतिक पण्डितों और समाजशास्त्रियों के सामने उस देश में, जहाँ 83, 58% जनसंख्या निरक्षर है, वयस्क मतदान और आम प्रतिनिधित्व पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था निर्मित करना लगभग असम्भव–सा काम था। निरक्षरता के अलावा हरिजनों, महिलाओं और अल्पसंख्यक

समूहों का भी सवाल था कि राजनीतिक दावे को वे कैसे व्यावहारिक रूप दे पाएँगे और देश की राजनीति पर उसका क्या असर पड़ेगा। जैसा कि गांधी जी ने कहा था, 'महिलाओं को वोट देने का अधिकार और कानूनी दर्जा मिलना चाहिए, लेकिन समस्या वहीं समाप्त नहीं होती। यह उस बिन्दु से शुरू होती है जहाँ महिलाएँ देश की राजनीति पर असर डालना शुरू करेंगी'। (गांधी, 1929, यंग इण्डिया, 17 अक्तूबर)

उपर्युक्त विवेचना में हम देख सकते हैं कि महिलाओं को मताधिकार देने के पीछे अनेक तरह की शंकाएँ काम कर रही थीं जबकि ऐसा नहीं था कि भारतीय समाज में पुरुषों की साक्षरता दर सन्तोषजनक थी या उनके ऊपर सन्देह का कोई कारण नहीं था। सही मायने में यह पुरुषसत्तात्मक समाज का सदियों से चला आ रहा स्वाभाविक रवैया और भय था जो स्त्रियों को कोई भी अधिकार देने से झिझकता अथवा घबराता था, किन्तु आज़ादी की चाह में आगे बढ़ चुकी महिलाओं ने मताधिकार हासिल करके ही दम लिया तथा राजनीति के क्षेत्र में भी अपने अनुकरणीय उदाहरण पेश किए।

ग़लती किसकी ?

रीना और रज़िया एक ही कॉलोनी में रहती थीं। दोनों स्कूल वैन से एक साथ स्कूल भी जाती थीं। इन दोनों में बहुत गहरी दोस्ती थी। कॉलोनी के पार्क में खेलना, गप्पें लड़ाना अपने सुख–दुःख बाँटना और एक–दूसरे की मदद करना यह सब उनकी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में शामिल था और शायद इन्हीं वजहों ने दोनों के आपसी रिश्ते को काफ़ी मज़बूत कर दिया था। स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद दोनों ने एक ही कॉलेज में एडमिशन लिया। इन दोनों के नम्बर बहुत अच्छे आये थे, इसलिए एडमिशन में कोई मुश्किल नहीं हुई।

कॉलेज का पहला दिन था। एक–दूसरे का साथ पाकर दोनों बहुत ख़ुश थीं, लेकिन अन्दर से बहुत डरी हुई थीं, यह सोच कर कि कहीं सीनियर्स उनकी रैगिंग न करें। कॉलेज पहुँच कर उन्हें ऐसा लगा जैसे वे किसी नई दुनिया में आ गई हों। नई बिल्डिंग, नये लोग, नया माहौल सभी कुछ नया था। दोनों ने चारों तरफ़ नज़र दौड़ायी और देखा कि झुंड में लड़के–लड़कियाँ गपशप कर रहे हैं। कोई सीढ़ियों पर बैठ कर किताबों के पन्ने पलट रहा था तो कोई पेड़ की छाँव में विषयों के चुनाव को लेकर बातचीत का रहा था। दोनों चलते–चलते कैन्टीन की तरफ़ पहुँचीं। वहाँ का नज़ारा और भी दिलचस्प था। लड़के लड़कियों का एक ग्रुप टेबल के चारों तरफ़ बैठा हुआ था। उसी ग्रुप का एक लड़का टेबल बजा कर गाना गा रहा था और बाकी स्टूडेंट्स

चाय की चुस्की लेते हुए उसके सुरीले गाने का आनन्द ले रहे थे। पूरा माहौल स्कूल से काफ़ी फ़र्क़ था। रीना और रज़िया को पहली बार अपने बड़े होने का एहसास हुआ।

रीना ने उतावलेपन से कहा, "रज़िया, देखो सभी लोग रंग–बिरंगे कपड़ों में कितने अच्छे लग रहे हैं ? मैं भी जीन्स, स्कर्ट पहन कर आया करूँगी।" रज़िया के चेहरे पर एकदम से मायूसी छा गयी। "क्या हुआ रज़िया तुम यह सब देख कर खुश नहीं हो ?" "अरे नहीं रीना, ऐसी बात नहीं है। मैं तो बहुत खुश हूँ। लेकिन मैं यह सब ड्रेसेस नहीं पहन सकूँगी क्योंकि मेरे घर में मनाही है।" रीना ने कहा, "मनाही तो मेरे घर में भी थी लेकिन मैं ज़िद करके सब पहन लेती हूँ। पर तुम अपना दिल छोटा मत करो। तुम तो यूँ ही बहुत अच्छी लगती हो।"

रीना और रज़िया ऑटो से कॉलेज जाती थीं। इन दोनों ने यह महसूस किया कि ऑटो में बैठे लड़के और बड़ी उम्र के आदमी उन्हें अजीब नज़रों से देखते हैं। उनका इस तरह से देखना दोनों को बहुत अटपटा लगता था। रोज़ की तरह वे आज भी ऑटो में बैठी थीं। तभी एक लड़का रीना से सट कर बैठ गया और कुछ देर बाद उसे छूने की कोशिश करने लगा। रीना उसकी इस अश्लील हरक़त से बहुत डर गयी और वह रज़िया की तरफ़ खिसकती चली गयी। कुछ देर बाद कॉलेज आ गया। रीना गुस्से से रज़िया से बोली, "कितने गन्दे लोग हैं। बैठने की भी तमीज़ नहीं हैं। वह लड़का मुझे लगातार छूने की कोशिश कर रहा था।" रज़िया ने आश्चर्य

से पूछा, "ओह तो तुम इसलिए मेरी तरफ़ खिसकती जा रही थीं। "हाँ तो करती भी क्या ?", रीना ने झुँझलाते हुए कहा। "रीना, अब ये स्कूल वैन तो है नहीं। ऑटो में तो हर तरह के लोग बैठते हैं। गुस्सा तो मुझे भी बहुत आता है, जब लोग सटकर बैठ जाते हैं और अश्लील हरकतें करते हैं और जब उन्हें ठीक से बैठने को कहो तो गुस्से से ऐसे घूरते हैं जैसे उन्होंने नहीं, हमने कोई गुनाह किया हो।" दोनों अपनी भड़ास निकालती हुई क्लास में चली गयी।

अगले दिन रीना और रज़िया ऑटो के आने का इन्तज़ार कर रही थी। तभी बाइक पर सवार दो लड़के गुज़रे और उन्होंने अपनी बाइक वहीं रोक दी। उसमें से एक लड़के ने रज़िया की तरफ़ देखते हुए छेड़ख़ानी के अन्दाज़ में कहा, "यहाँ खड़ी होकर क्यों अपने ख़ूबसूरत पैरों को तक़लीफ़ दे रही हो? तुम कहो तो मैं तुम्हें छोड़ आऊँ ?" रीना ने झट से रज़िया का हाथ पकड़ा और तेज़ चाल में आगे बढ़ने लगी। तभी दूसरा लड़का रीना से छेड़ख़ानी करने लगा और बोला, "ज़रा सँभल कर चलो, कहीं तुम्हारे खूबसूरत पैर ज़ख्मी न हो जायें।" इसी बीच दूसरे लड़के ने कुटिल हँसी हँसते हुए कहा, "पैर अगर ज़ख्मी हो भी जायें तो पैरों में मलहम लगवाने के लिए हमें बुला लेना। बहुत प्यार से मलहम लगा देंगे।"

दोनों सहेलियों का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। रज़िया उन लड़कों को डाँटने जा रही थी कि तभी रीना ने उसका हाथ दबाते हुए कहा, "नहीं रज़िया, इनसे कुछ मत बोलो वरना ये और भी गन्दी हरक़त करेंगे।

देखो न, सड़क पर इतने लोग चल रहे हैं और तमाशा भी देख रहे हैं लेकिन कोई हमारी मदद के लिए नहीं आ रहा।" रज़िया को रीना की बात ठीक लगी। दोनों ने सामने से आ रहे ऑटो को रोका और उसमें बैठ गयी। बाइक सवार लड़के उनके ऑटो का पीछा करते हुए उल्टे–सीधे कमेन्ट पास करने लगे। सड़क पर जाम बहुत था इसलिए ट्रैफ़िक कुछ देर के लिए रुक गया। लड़के ऑटो के बिल्कुल करीब थे इसलिए रीना ने लड़कों की बाइक का नम्बर नोट कर लिया। यह सब देख कर ऑटो में बैठे एक पुरुष ने अपने बगल में बैठी महिला से कहा, "अब लड़कियाँ जीन्स टॉप और स्कर्ट पहन कर निकलेंगी तो उनके साथ छेड़खानी नही तो और क्या होगा?" अपने लिये कही गयी यह बात रीना को बहुत बुरी लगी।

घर पहुँच कर रीना ने हाथ–मुँह धोया और अपने कमरे में जाकर लेट गयी। थोड़ी देर बाद माँ कमरे में आयी और बोलीं, "रीना, अभी से क्यों लेट गयी ? खाना तो खा लो।" "माँ मेरा खाने का मन नहीं है, आप खा लो" "क्या हुआ, तबीयत तो ठीक है ?" माँ ने पूछा।

"हाँ माँ मैं ठीक हूँ, बस सोना चाहती हूँ।" माँ को लगा, रीना ज़्यादा थकी है। इसलिए वह चुपचाप कमरे से चली गयी। शाम की चाय पर भी जब रीना अपने कमरे से नहीं निकली तो उसका हाल जानने के लिए उसके माता–पिता कमरे में गये। उन्होंने देखा, रीना खिड़की के पास बैठी थी और उसके चेहरे पर अजीब सी उदासी थी। पापा ने पूछा, "रीना, तुमने दोपहर का खाना भी नहीं खाया और न तुम हम सब के साथ चाय पीने के लिए आयी। क्या बात है बेटा, तुम बताती क्यों नहीं हो ?" रीना ने बुझे शब्दों में उन लड़कों की गन्दी हरक़त के बारे में अपने माता–पिता को बता दिया।

सारी बात सुनने के बाद रीना की माँ उल्टे उसी को ही डाँटते हुए बोली, "तुम्हें बड़ा शौक है जीन्स, स्कर्ट पहनने का ? ये सब पहनोगी तो लड़के गन्दी निगाहों से ही देखेंगे।" पिता ने भी उसी को दोषी ठहराते हुए कहा, "कितनी बार कहा है कि सलवार, कुर्ता पहनकर निकला करो। यही हाल रहा तो घर बैठो, कॉलेज जाने की ज़रूरत नहीं है।

जितनी छूट दो उतना ही दिमाग़ ख़राब होता जा रहा है इस लड़की का।" रीना ने रूँधे गले से कहा, "पापा, रज़िया सिर्फ़ सलवार कुर्ता ही पहनती है, लेकिन छेड़खानी तो उसके साथ भी हुई है।" पापा ने सख़्ती से कहा "कोई क्या पहनता है, क्या नहीं उससे मुझे मतलब नहीं है।" उन्होंने रीना की माँ से कड़े शब्दों में कहा, "रेखा, ये सब तुम्हारी ग़लती का नतीजा है। तुम सारा दिन घर पर रहती हो और एक लड़की की परवरिश भी तुमसे ठीक से नहीं हो पाती है ?" "क्या करूँ मैं, ये लड़की तो मेरी एक नहीं सुनती है।" माँ ने झुँझलाते हुए कहा।

रीना अपने माता–पिता के इस व्यवहार से बहुत दुख़ी हुई। उसने सोचा था कि जिस तरह उसके माता–पिता उसकी हर छोटी–बड़ी परेशानियों में उसका साथ देते हैं, इस बार भी उसका दुःख हल्का करके उसकी हिम्मत बढ़ायेगे। रात भर उनकी कड़वी बातें उसके कानों में गूँजती रहीं और वह बहुत रोयी। अपनों से परायेपन के व्यवहार ने मानो उसे तोड़ दिया हो।

दूसरे दिन कॉलेज जाते समय रीना बहुत चुप थी। रज़िया ने रीना की तरफ़ देखा और पूछा, "रीना, तुम्हारी आँखें क्यों सूजी हैं ? रोयी हो क्या ?" रीना ने सिर हिलाते हुए 'हाँ' में जवाब दिया। "ऐसी क्या बात हुई, मुझे बताओ।" रीना ने अपना दिल हल्का करते हुए रज़िया को सारी बात बता दी। रज़िया ने हैरानी से कहा, "तुम पागल हो क्या, ये बात तुमने अंकल–आँटी को क्यों बतायी ? मैं अपने घर में ऐसी बातें किसी को नहीं बताती, क्योंकि मुझे पता है कि मेरे अब्बू–अम्मी भी मेरे साथ ऐसा ही बर्ताव करेंगे। वो या तो मेरी पढ़ाई छुड़वा देंगे या खुद मुझे छोड़ने और लेने आया करेंगे। तुम्हारे साथ रास्ते में हँसी–खुशी के जो पल बिता लेती हूँ उससे भी मुझे महरूम रहना पड़ेगा।"

रीना गुस्से से बोली, "नहीं रज़िया हमें अपने माता–पिता से बात करनी होगी। गन्दी हरक़त उन लड़कों ने की और डाँट मुझे खानी पड़ी। उस रोज़ ऑटो में वह आदमी भी इन सब के लिए मेरी ड्रेस को दोषी ठहरा रहा था और

मेरे खुद के माँ–बाप मुझ पर उँगली उठा रहे थे। किसी ने भी उन लड़कों को दोषी नहीं ठहराया। ग़लती किसकी है, हमारी या उनकी ?" "रीना ये सब बातें सोच कर तुम अपने को और दुःखी मत करो। जितना सोचोगी उतना परेशान होगी।" रज़िया ने समझाते हुए कहा।

अचानक वही बाइक सवार लड़के आये और भरी सड़क में रज़िया का दुपट्टा गले से खींच कर भाग गये। उनकी इस हरक़त से रज़िया को बेहद अपमान महसूस हुआ और वह वहीं खड़े होकर रोने लगी। अपनी सहेली को यूँ रोता देख रीना की आँखें भी भर आयी। उसने रज़िया को सँभाला और रिक्शा करके उसे घर तक छोड़ने गयी। घर पर रज़िया के अब्बू–अम्मी और चच्चा–चच्ची सभी मौजूद थे। रज़िया को रोता देख सभी घबरा गये। अब्बू ने घबराते हुए पूछा, "क्या हुआ मेरी बच्ची ? तुम रो क्यों रही हो ?" अपने साथ हुए हादसे को रज़िया छुपा नहीं पायी और रोते हुए उसने सारी बात अपने घरवालों को बता दी। यह सुन रज़िया की चच्ची उसे तानें मारने लगी, "मैं न कहती थी कि यह लड़की अपने साथ कोई न कोई हादसा ज़रूर करवाएगी। बिना बुर्क़े के घर से निकलेगी तो यही होगा। हम सब की बदनामी करवाने से बाज़ नहीं आयेगी ये।" रज़िया के अब्बू ने रज़िया को सीने से लगाया और तेज़ आवाज़ में कहा, "बस, अब एक लफ्ज़ भी मेरी बेटी के बारे

में कोई नहीं बोलेगा।" इसी बीच रज़िया की अम्मी ने तमतमाते हुए अपनी देवरानी से कहा, "क्यों रुख़साना, भूल गयीं कि पड़ोस की नग़मा के साथ क्या हुआ था ? वह हमेशा अपने घर से बुर्क़े में ही निकलती थी। उस रोज़ भी जब कुछ लड़कों ने उसके साथ छेड़ख़ानी की और उसे अपनी कार में घसीटने की कोशिश की तो उस वक़्त भी वह बुर्क़े में ही थी। इस हादसे के बाद उसके घरवालों ने उसकी पढ़ाई छुड़वा दी और आनन–फानन में उसकी शादी उससे दुगनी उम्र के आदमी के साथ करवा दी। जिस तरह उसकी ज़िन्दगी तबाह हुई, तुम जानती तो हो। यह सब मैं अपनी बच्ची के साथ नहीं होने दूँगी।"

रज़िया के अब्बू ने अपनी बेटी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "इसमें मेरी बेटी की कोई ग़लती नहीं है। जिसकी ग़लती है सज़ा उसको मिलनी चाहिए।" रज़िया अपने अब्बू–अम्मी के बर्ताव से बेहद ख़ुश हुई। अब्बू ने रज़िया से पूछा, "बेटी, तुम्हें उन लड़कों के बाइक का नम्बर पता है ?" रज़िया झट से बोली, "हाँ अब्बू, उस रोज़ रीना ने उन लड़कों का नम्बर नोट किया था। अभी देती हूँ।" अब्बू ने अपने बेटे हसन से कहा, "चलो हसन थाने में उन लड़कों के ख़िलाफ रिपोर्ट दर्ज करवा दें।" रज़िया के चच्चा हैरानी से बोले, "भाईजान क्या हो गया है आपको ? छेड़खानी की शिकायत थाने में करेंगे ? ख़ानदान की कितनी बदनामी होगी कभी सोचा है आपने ? "पुलिस किस तरह के सवाल करेगी ?" समाज में कौन क्या कहेगा इसकी मुझे परवाह नहीं है। मेरी बेटी को ज़िसने बेइज़्ज़त किया है, उसकी शिकायत तो करनी ही होगी।" अपने सख़्त लहजे से रज़िया के अब्बू ने अपने भाई को चुप करा दिया और हसन के साथ थाने पहुँच कर रिपोर्ट दर्ज करा दी। हालाँकि अब्बू और हसन को उन लड़कों की गिरफ़्तारी के लिए थाने के काफ़ी चक्कर काटने पड़े लेकिन वे निराश नहीं हुए। आख़िर में तफ़्तीश के बाद पुलिस ने उन आरोपियों को गिरफ़्तार कर लिया और उन पर मुकदमा चला कर उनको सज़ा भी दिलायी। समाज के वही लोग जो रज़िया के माता–पिता को बदनामी का डर दिखा कर चुप रहने की सलाह दे रहे थे, अब उनकी तारीफ़ कर रहे थे।

दोस्ती का अधिकार

श्यामिली नाम की एक लड़की थी बड़ी नटख़ट और शैतान। हर वक़्त फ़ुटबॉल की तरह उछलफाँद। सबका यही कहना था कि नौ साल की लड़की है या शैतान की नानी। श्यामिली से बड़ा ग्यारह साल का उसका भाई प्रतीक भी था लेकिन श्यामिली की तरह चंचलता उसमें न थी। श्यामिली का इतना चंचल होना कुछ ग़लत भी न था, क्योंकि बचपने का दूसरा नाम चंचलता और मासूमियत ही तो है। श्यामिली उसका जीता जागता प्रतिबिम्ब थी। प्रतीक और श्यामिली, दोनों बच्चे अपने माँ बाप के बहुत चहेते थे। रिदा और समीर, श्यामिली और प्रतीक को अपनी औलाद के रूप में पाकर बहुत खुश थे। श्यामिली अपने परिवार में एक खुशहाल ज़िन्दगी जी रही थी। माँ–बाप परिवार की ज़िम्मेदारी में व्यस्त थे और बच्चे पढ़ाई–लिखाई और खेल–कूद के साथ अपना वक़्त बिता रहे थे।

श्यामिली और प्रतीक धीरे–धीरे बड़े हो रहे थे। श्यामिली ग्यारह साल की होने को आयी थी। श्यामिली को अब बड़े होने का एहसास भी दिलाया जाने लगा था। जहाँ पहले उसके चंचल स्वभाव को देखकर उसके बारे में ये कहा जाता था कि श्यामिली तो बिल्कुल

लड़कों की तरह शैतान है, वहाँ इस जुमले की जगह अब कुछ इस तरह की बातों ने ले ली थी कि लड़कियों को ये सब शोभा नहीं देता, अब खेल–वेल से ध्यान हटाओ, घर के काम काज में ध्यान लगाओ। श्यामिली के तेरह की उम्र तक पहुँचते–पहुँचते उसके व्यक्तित्व में बदलाव दिखने लगा था। ज़्यादा बोलने वाली, ज़्यादा सवाल पूछने वाली, ज़्यादा चंचल रहने वाली श्यामिली अब वैसी न थी। ऐसा नहीं था कि श्यामिली के माँ बाप उसे प्यार नहीं करते थे, बल्कि उसकी हर ज़रूरत और ख़्वाहिश का ध्यान रखते थे। लेकिन अब वह श्यामिली में एक बच्चे के बजाए समाज के मुताबिक गढ़ी हुई लड़की खोजने लगे थे, या यूँ कहें कि वे श्यामिली को उस छवि में ढालने लगे थे। श्यामिली के माँ–बाप उसे एक अच्छा इंसान बनाने की जगह एक अच्छी लड़की बनाने में जुट गए थे।

उधर प्रतीक भी 15 साल का हो गया था। इधर जहाँ श्यामिली की दुनिया घर में सीमित हो रही थी वहीं प्रतीक की दुनिया घर के बाहर विस्तृत होती जा रही थी। श्यामिली भी इस बात को महसूस करने लगी थी, और सोचती थी कि पहले भैया और मेरे लिए मम्मी पापा एक सी बातें सोचते थे, लेकिन उम्र बढ़ने के साथ–साथ फ़र्क़ क्यों दिखने लगा। जहाँ पहले दोनों ही माँ–बाप को बता के बाहर जाते थे, वहाँ प्रतीक को अब ज़्यादा आज़ादी और छूट के साथ बाहर निकलने का मौक़ा मिल जाता है और श्यामिली को तो बताने, कहने और इजाज़त लेने की प्रक्रिया के बीच कई तरह के स्पष्टीकरण देने पड़ते हैं, और अगर श्यामिली के स्पष्टीकरण माँ–बाप के लिए सार्थक नहीं हुए तो जितना भी हाथ पैर मार ले श्यामिली बाहर नहीं निकल सकती। बस घर से स्कूल और स्कूल से घर के बीच की धुरी में पृथ्वी की भाँति चक्कर लगाना ही श्यामिली के लिए सही माना जाने लगा। इस धुरी से ज़रा भी इधर–उधर होना श्यामिली के लिए अच्छा नहीं माना जाता था। इन सब बातों की श्यामिली इतनी आदी हो गई थी कि धीरे–धीरे उसने इस बारे में सोचना भी कम कर दिया।

ज़िन्दगी के अगले दो साल भी ऐसे ही बीत गए। श्यामिली और प्रतीक, दोनों अब नौजवान हो चुके थे। श्यामिली अब दसवीं कक्षा में थी जबकि प्रतीक को दसवीं पास किये दो साल बीत चुके थे, प्रतीक अब बारहवीं कक्षा में पढ़ रहा था। दोनों की ही इस बार बोर्ड की परीक्षा थी, इसलिए दोनों स्कूल के अलावा कोचिंग भी जाते थे। श्यामिली का दायरा भी अब सिर्फ़ घर और स्कूल से बढ़ कर कोचिंग तक हो गया था। श्यामिली अब तक सिर्फ़ बालिका विद्यालय में ही पढ़ी थी इसलिए लड़कों से उसका कोई ख़ास वास्ता नहीं पड़ा था, लेकिन कोचिंग में लड़का–लड़की दोनों ही उसके सहपाठी थे। ऐसे में, लड़कियों के साथ–साथ लड़कों से भी दोस्ती होना स्वाभाविक था। यहाँ उसे अभय के रूप में एक अच्छा दोस्त मिला। अभय पढ़ाई में तेज़ होने के साथ–साथ दिल से एक अच्छा इंसान भी था। श्यामिली और अभय दोनों एक सीट पर बैठते थे, साथ मिल कर गणित के सवाल हल करते थे और दिल की बातें भी साझा करते थे।

श्यामिली ने अपनी मम्मी को अपने नये दोस्त के बारे में बताया, लेकिन यह क्या ? मम्मी का तो पूरा लहजा ही बदल गया। मम्मी ने श्यामिली को डाँटते हुए कहा, "मुझे तुम्हारा लड़कों से दोस्ती करना बिल्कुल पसन्द नहीं है। लड़कों के साथ दोस्ती करने वाली लड़कियाँ अच्छी नहीं मानी जाती हैं। अगर तुम्हारे पापा को अभय से दोस्ती के बारे में पता चल गया तो वो तुम पर तो गुस्सा करेंगे ही, साथ में मेरी भी शामत आ जाएगी।" फिर श्यामिली की माँ ने तीखे लहजे में श्यामिली से कहा, "अब मैं तुम्हारी जुबान से किसी भी लड़के का नाम न सुनूँ। जाओ गिलास में दूध रखा है, जा कर पी लो और सो जाओ। सुबह स्कूल जाना है।" श्यामिली चुपचाप किचन से निकली और बिना दूध पिये ही अपने बिस्तर पर जा कर लेट गयी। अब उसने यह फ़ैसला किया कि अभय को अपने दोस्तों की सूची से मिटा देगी, लेकिन ये तस्वीर सिर्फ़ मम्मी–पापा के लिए ही होगी। वास्तव में, अभय उसके दोस्तों की सूची में सबसे आगे रहेगा और पहले की तरह ही अभय से अपनी दोस्ती

का रिश्ता बख़ूबी निभायेगी, क्योंकि अभय एक अच्छा इंसान है। श्यामिली को पहली बार अपने माँ–बाप की नाजायज़ रोक–टोक की वजह से उनसे झूठ बोलने और अपनी ज़िन्दगी का कुछ हिस्सा उन लोगों से छुपाने का फ़ैसला करना पड़ा। इस तरह की बात उसने कभी सोची तक नहीं थी लेकिन माँ की डाँट ने उसे मजबूर किया।

श्यामिली अब भी रोज़ की तरह घर से स्कूल, स्कूल से कोचिंग, कोचिंग से घर की अपनी धुरी पर घूम रही थी। उसे इस बात का एहसास होने लगा था कि भाई प्रतीक तो स्कूल और कोचिंग के अलावा भी बाहर समय बिता लेता है लेकिन उसके लिए ऐसा करना ग़लत माना जाता है। ऐसा क्यों है ? इस 'क्यों' का जवाब श्यामिली को नहीं मिला। एक शाम की बात है, प्रतीक छत पर किसी से बात कर रहा था। उसकी बातों का कुछ हिस्सा पापा ने सुन लिया। पापा नीचे आये और मम्मी से बोले, "आपके साहबज़ादे बड़े हो गए भई, किसी लड़की से बात कर रहे हैं।" मम्मी हँस कर बोली, "अच्छा, यही तो उम्र है। इस उम्र में ये नहीं करेगा तो फिर कब करेगा?" मम्मी की बात सुन कर पापा भी हँसने लगे। श्यामिली दूसरे कमरे में ये सब बातें सुन रही थी। उसे एक बात बहुत खटकी जिसके बारे में उसने मम्मी–पापा से बात करने का फ़ैसला किया। अगले दिन श्यामिली मम्मी–पापा को अकेला पाकर उनके पास जाकर बैठ गई और बोली, "मम्मी–पापा आप मुझे प्यार करते हैं ?" मम्मी–पापा ने एक साथ कहा, "हाँ, करते हैं फिर श्यामिली बोली, "उतना ही जितना की प्रतीक भैया को करते हैं

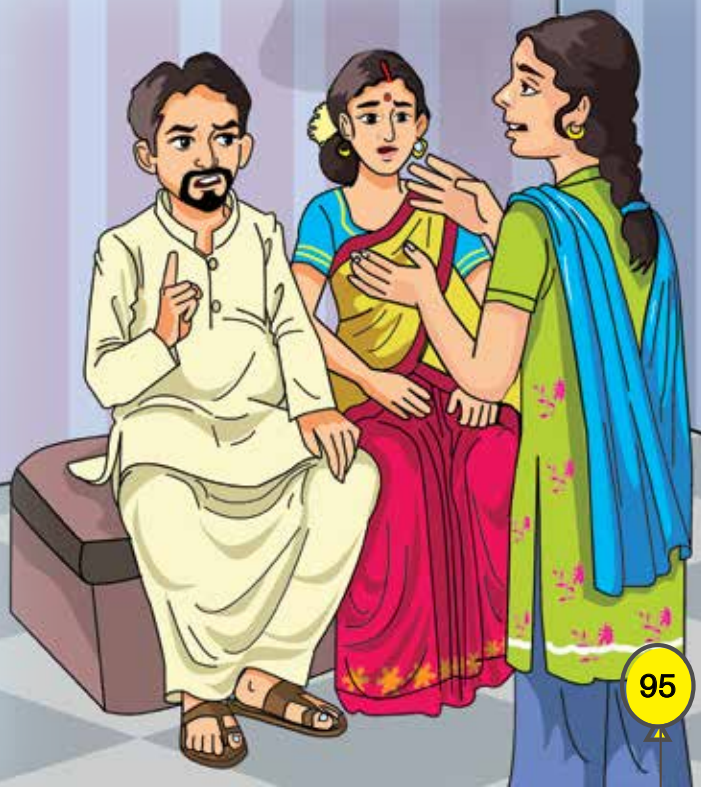

?" दोनों ने कहा, "हाँ, बिल्कुल।" फिर पापा ने कहा, "तुम ये सवाल क्यों पूछ रही हो ? क्या तुम्हें हम लोगों के प्यार पर शक़ है ? एक सा खाना, एक सी पढ़ाई, एक सी सहूलियतें दी हैं तुम्हें। क्या अपने साथ कुछ कमी लगती है तुम्हें ?" श्यामिली बोली, "नहीं–नहीं, पापा। इन सब बातों में तो हमेशा आपने मेरे और भैया में कोई फ़र्क़ नहीं किया।" मम्मी बोली, "तो फिर ऐसा क्यों पूछ रही हो ?" श्यामिली बोली, "इन सबके अलावा और दूसरी बातें हैं जिसमें मुझे फ़र्क़ लगता है, ख़ासकर एक बात।" श्यामिली की इस बात पर मम्मी–पापा एक–दूसरे का चेहरा देखने लगे। पापाा बोले, "कौन सी बात ?" श्यामिली बोली, "जब मैंने एक लड़के से दोस्ती भर की तो आप लोगों को ग़लत लगा। लेकिन जब भैया किसी लड़की से दोस्ती से भी आगे किसी रिश्ते में गया, तब आप लोगों ने इस बात को खुश हो कर लिया"। मम्मी एक मिनट भी चुप रहे बिना बोलीं, "तुमने फिर ये सब शुरू कर दिया। क्या तुम्हें अभय से दोस्ती माँ–बाप की इच्छा और घर के सम्मान से ज़्यादा प्यारी है ? श्यामिली बोली, "बात यहाँ अभय की ही नहीं है, बल्कि उससे कहीं ज़्यादा है। एक ही बात भैया के लिए सही और मेरे लिए ग़लत क्यों हो जाती है?" श्यामिली का इतना कहना था कि पापा, गुस्से से आग बबूला हो गये। पापा ने डाँट कर कहा, "हाँ। तुम्हारा लड़कों से दोस्ती करना ग़लत है, बहुत ग़लत है। इन सबसे दूर रहोगी तो अच्छा रहेगा। तुमसे प्यार तो हम बहुत करते हैं लेकिन प्यार अपनी जगह है और परिवार की इज़्ज़त अपनी जगह। और यह बात जान लो कि अगर तुम्हारा भाई लड़की से दोस्ती रखेगा तो हमारी बदनामी

नहीं होगी, लेकिन तुमसे ज़रा भी ऊँच–नीच हो गयी तो हम किसी को मुँह दिखाने के लायक़ भी नहीं रहेंगे। यह बात तुम गाँठ बाँध लो कि इस मामले में तुम भाई की बराबरी कभी नहीं कर सकती और न ऐसा करने की कभी सोचना। वरना हमारा प्यार कब नफ़रत में बदल जायेगा, तुम समझ भी नहीं पाओगी।"

मम्मी–पापा का ऐसा व्यवहार देख कर श्यामिली के पैरों से ज़मीन निकल गयी। वह रोती हुई अपने कमरे में आकर लेट गई। उसे विश्वास था कि आज उसे अपने सवालों के जवाब मिल जायेगे। लेकिन मम्मी–पापा से बात करके उसके दिमाग़ में और कई सवाल पैदा हो गये। उसके दिमाग़ में यही सवाल कौंध रहे थे कि एक ही बात एक बच्चे के लिए सही और दूसरे के लिए ग़लत कैसे हो सकती है ? लड़का और लड़की के लिए सही–ग़लत के पैमाने अलग–अलग क्यों हैं ? मम्मी–पापा के लिए उनके बच्चे लड़का और लड़की में क्यों बँट गये ? क्यों यह दोहरापन है कि कोई काम भाई करे तो सामान्य बात है जबकि मैं करूँ तो परिवार की इज़्ज़त ख़तरे में पड़ जाती है ? या फिर इज़्ज़त और बदनामी के नाम पर मेरी आज़ादी छीनी जा रही है ? चरित्र को सम्भाल कर रखने की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ लड़की की ही क्यों ? लड़के जितना भी चरित्रहीन क्यों न हों, उनका लड़का होना भर ही उनके चरित्रवान होने का प्रमाण क्यों होता है ? परिवार की इज़्ज़त को सिर्फ़ लड़की से ही जोड़ के क्यों देखा जाता है ? ख़ुद से बातें करते–करते श्यामिली को अब तक यह तो समझ आ ही गया था कि यह असमानता और दोहरापन सिर्फ़ लड़का–लड़की होने के नाते, या कहें लिंग के आधार पर किया जाता है। पर ऐसा क्यों किया जाता है यह अभी भी उसे समझ में नहीं आ रहा था। ये सब सवाल उसे बेचैन कर रहे थे लेकिन कोई भी ऐसा शख़्स उसके आस–पास नहीं था जो उसकी बेचैनी को शान्त कर पाता। धीरे–धीरे रात ढल रही थी, श्यामिली नींद में डूबती जा रही थी। कल फिर सुबह का सूरज उगेगा, चारों ओर रौशनी बिखेरेगा। लेकिन वो रौशनी जो श्यामिली के उन सवालों को जवाबों से रौशन कर पाती, उसका दूर दूर तक नामो–निशां न था।

लड़की की कहानी

आओ सुनें हम मिल के इक लड़की की कहानी
ये कहानी हम सुनेंगे इक लड़की की ज़ुबानी
आओ सुनें हम मिल के इक कहानी

माँ ने अपने गर्भ में देखो इक बच्चे को पाला है
लोग समझने लगते हैं कि लल्ला आने वाला है
पर हो जाती है बेटी तो क्यूँ खुशियाँ कम हो जाती हैं
छा जाता है मातम सबकी क्यूँ आँखें नम हो जाती हैं
जब लड़का पैदा होता है तो सोहर गाए जाते हैं
लड़की होती है तो फिर क्यूँ आँसू बहाये जाते हैं
अब बन्द करो ये फ़र्क़, करो मत अब तुम ये नादानी
आओ सुनें हम मिल के इक लड़की की कहानी

लड़का बड़ा होता है तो क्यूँ उसे किताबें मिलती हैं
लड़की बड़ी होती है, उसको रीति–रिवाज मिलती हैं
अच्छा खाना, अच्छे कपड़े लड़के के हिस्से आते हैं

लड़की के हाथों में घर के बर्तन पकड़ाये जाते हैं
ये भी कर लो, वो भी कर लो लड़कों को ये समझाते हैं
लड़की तो पराया धन है कहकर उसे ठेस पहुँचाते हैं
लड़की ही देती क्यूँ है पग–पग पर हर कुर्बानी
आओ सुनें हम मिल के एक लड़की की कहानी

लड़के–लड़की में फ़र्क़ नहीं अब हमें मानना होगा
होता आया है जो ख़त्म अब उसको करना होगा
सबका अपना वजूद है जब ये बात समझ में आयेगी
तब लड़की भी लड़कों की तरह घर में दुलरायी जायेगी
ख़ुद चुनेगी अपने रस्ते वो ख़ुद अपनी राह बनाएगी
उन राहों में आगे बढ़कर वो अपनी मंज़िल पायेगी
बदलेगी हवाओं का रुख़ वो बदलेगी रीत पुरानी
बस यही थी वो कहानी जो तुमको थी सुनानी
आओ सुनें हम मिल के इक लड़की की कहानी

आत्मसम्मान

'ज़िन्दगी इन्सान को कुछ न कुछ सिखाती ही है।' अक्सर लोग इसे दार्शनिक ख़्याल की तरह इस्तेमाल करते हैं लेकिन मेरे लिए यह महज़ एक फ़िक़रा नहीं बल्कि मेरी ज़िन्दगी की कहानी है। अरे, आप लोग भी सोच रहे होंगे कि यह कौन एकदम से आकर 'मेरी ज़िन्दगी– मेरी ज़िन्दगी' कर के अपनी बात करने लगा और उसकी ज़िन्दगी से आपका क्या लेना–देना ?

वैसे, आपका सोचना ठीक भी है। बिना किसी का नाम जाने, किसी के बारे में बिना कुछ जाने भला कोई अजनबी की बात क्यों सुनने लगा ? चलिए, आपकी इस शिकायत को दूर ही कर देते हैं। शायद इस शिकायत को दूर करते–करते हम लोगों के बीच एक रिश्ता ही बन जाये।

मैं अपने दस साल पहले की ज़िन्दगी के पन्नों को पलटती हूँ। दस साल पहले मेरा नाम सुधा था। वैसे आज भी यही है। लेकिन उम्र वह न थी जो आज है। उस समय नयी उमंगें, नयी ख़्वाहिशें – चारों तरफ़ इसी का सैलाब था। शायद इस तरह का सैलाब 20 साल की उम्र के हर एक नौजवान को घेरे रहता है। तक़रीबन वही हाल मेरा भी था। वैसे पढ़ाई में तो मैं अच्छी ही थी तो लगता था कुछ न कुछ तो ज़रूर ही बन जाऊँगी। देखने में भी किसी से कम न थी। तो शादी होने में भी कोई ख़ास दिक़्क़त नहीं लगती थी। साथ ही, मैं अपने माँ–बाप की चहेती भी थी और होती भी क्यों न ? अरे, अच्छी लड़की के सभी फर्ज़ हमेशा मैंने बहुत अच्छे से निभाये। किसी

लड़के से तो मेरा दूर–दूर तक कोई वास्ता न था। लड़कियों से भी काम भर की ही दोस्ती रखती। बस, कॉलेज से घर, घर से कॉलेज। इसके अलावा अपने बड़ों की किसी बात को मैंने ख़ारिज करना ही नहीं सीखा था। हमेशा दूसरों की ही सुनी। दूसरों की इच्छा के आगे अपनी इच्छा तो मेरे लिए कोई मायने ही नहीं रखती थी। मेरी तारीफ़ अक्सर कुछ इस तरह के जुमलों से होती थी कि सुधा तो बिल्कुल गाय है। यह कॉम्पलीमेंट मेरे कानों को इतना लुभाता कि मैं अपनी इस तस्वीर को बरक़रार रखने में दुगुनी मेहनत से लग जाया करती। मैं चरित्रवान, सुघड़ और सीधी–साधी लड़की का एक उदाहरण बन कर बहुत ही ख़ुश थी।

जैसा कि मैंने आपको बताया था कि मैं दिखने में तो ठीक–ठाक ही थी। इसलिए 21 वर्ष की होते–होते कई रिश्ते मेरे लिए देखे जा चुके थे और मैं उन्हें पसन्द भी आ चुकी थी। उसमें से एक अदद रिश्ता मेरे घरवालों ने मेरे लिए चुन लिया। आदतन, उस चुनाव पर मैंने न तो कोई सवाल उठाया और न ही कोई एतराज़ किया। और भला करती भी क्यों ?

अच्छी लड़की होने के नाते इस मसले पर बोलना, राय देना या फिर इन्कार करना मेरे अधिकार क्षेत्र में भी नहीं आता। तो फिर क्यों करती भला ? हाँ बस, इतना ज़रूर चाहा कि मेरी पढ़ाई जारी रहे। एम.ए. के बाद पी.एच.डी. करने की इच्छा ज़रूर मैंने ज़ाहिर की लेकिन पता चला कि राहुल, मेरे पति, नहीं चाहते कि मैं शादी के बाद पढ़ाई जारी रखूँ। यूँ पी.एच. डी. करने की बात आयी–गयी हो गयी। इसमें मुझे कुछ ख़ास ग़लत भी नहीं लगा। इसलिए

बहस का तो कोई सवाल ही न था। और क्यों मैं अपनी इस इच्छा को ज़िद बनाती ? होने वाले पति थे वो मेरे। उस समय मैं यही सोचती थी कि पति के रूप में मेरी ज़िन्दगी का यह फ़ैसला करना उनका हक़ था। और अच्छी बीवी और अच्छी लड़की के क्या–क्या फ़र्ज़ होते हैं, यह तो मुझे बचपन में ही घुट्टी के साथ पिलाया गया था। कुल मिला कर मुझे यह अच्छे से पता था कि पति और ससुराल वालों को हर हाल में खुश रखना है, उनकी पसन्द–नापसन्द का ख़्याल रखना है और, सबसे ज़रूरी, पति की हर बात को मानना। इन्हीं सब बातों को गाँठ बाँध कर मैंने राहुल के साथ अपनी शादीशुदा ज़िन्दगी में क़दम रखा। राहुल के साथ ही साथ कई दूसरे रिश्ते भी मेरी ज़िन्दगी में दाख़िल हुए – मेरी सास, ससुर और देवर।

शुरुआती दिनों में मुझे सब कुछ बहुत ही नया–नया और अच्छा सा लगता था। नये–नयेघर की धूप भी बिल्कुल नयी–नयी और अलग–सी लगती थी। नयी–नयी साड़ियों में खुद को नये–नये सिंगारदान के सामने देखना बड़ा लुभावना लगता था और उसमें नये–नये पति का प्यार और भी चार चाँद लगा देता था। बहरहाल, ज़िन्दगी के नये सफ़र का आग़ाज़ हुआ था तो इतना होना ज़रूरी ही था। जल्द ही राहुल की माँ से मेरा अच्छा रिश्ता बन गया। उनका नाम गीतांजलि था। मैं उन्हें 'गीता माँ' कहती थी। मेरे लाख मना करने पर भी वह मेरे साथ बराबर से काम करती थीं। कहती थीं, "बहू लायी हूँ, नौकरानी नहीं जो तुझ अकेली जान पर सारा काम छोड़ दूँ।" हम सास–बहू बातचीत करते–करते पूरा दिन हँसते हुए गुज़ार देते थे। हक़ीक़त में हम सास बहू की जोड़ी तो 'औरत ही औरत की दुश्मन होती है' कहावत की काट थी। ससुर जी से तो बहुत कम ही बात होती थी। देवर दूसरे शहर में मेडिकल की पढ़ाई कर रहा था तो उससे भी कभी–कभार ही फ़ोन पर बात होती थी और पति जी भी वक़्त के साथ बिज़ी रहने लगे। कुल मिला कर मैं गीता माँ को ही अपने क़रीब पाती थी।

एक दिन की बात है, गीता माँ ने पूछा, "तुम पी.एच.डी. करना चाहती थीं न ?" मैंने 'हाँ' में

जवाब देते हुए कहा, "कोई बात नहीं। न हुई न सही"। गीता माँ बोलीं, "मेरी इस मसले पर राहुल से बहुत बहस हुई थी और मैंने उससे कहा था कि इस शर्त के साथ वो लड़की क्या, कोई भी लड़की तुझसे शादी करने को नहीं तैयार होगी और किसी को तैयार होना भी नहीं चाहिए क्योंकि पढ़ना उसका अधिकार है और यह अधिकार तुम किसी से कैसे छीन सकते हो ?" फिर गीता माँ ने मेरी तरफ़ देखते हुए कहा, "लेकिन जब तुमने 'हाँ' कर दी तो मुझे बहुत हैरानी हुई" गीता माँ की बात सुनकर मुझे बहुत ही ताज्जुब हुआ कि वह राहुल की माँ होकर ऐसी बात कर रहीं हैं जबकि ख़ुद मेरे अपने घर में लड़की का इस तरह की शर्त रखना एक अपराध की ही तरह से मेरे दिमाग़ में बैठाया गया था। गीता माँ ने मुझसे यह भी कहा कि मैं कहूँ तो वह राहुल से मेरे पी.एच. डी. करने की बात फिर से कहें। लेकिन पता नहीं क्यों मैंने माँ को मना कर दिया। बिना पी. एच.डी. करे भी मेरी ज़िन्दगी ठीक चल ही रही थी। कमाने वाला पति और ख़्याल रखने वाली सास, और क्या चाहिए था मुझे?

धीरे–धीरे मेरी ज़िन्दगी की गाड़ी बढ़ रही थी। वक़्त के साथ चीज़ें थोड़ा बदलती हैं, यह तो मैं जानती थी लेकिन इतना बदलेंगी, मैंने सोचा ही न था। कुछ महीनों बाद राहुल का एक अलग ही रूप मेरे सामने आया बात–बात पर गुस्सा, चीख़ना, चिल्लाना। तानों की तो डायरी शायद राहुल रोज़ ही अपडेट करते थे। उनके कुछ वाक्य तो मेरे कानों में उनकी ग़ैरमौजूदगी में भी गूँजा करते थे। "माँ–बाप ने यही सिखाया है ?" "कोई तमीज़ नही है तुम्हें।", "कोई काम ढंग का नहीं करती हो।" और पता नही क्या–क्या। भगवान क़सम, मैंने कभी कुछ पलट कर उन्हें कहा हो। मेरे

मायके वालों से भी उन्हें कई शिकायतें थीं। कहते थे,"तुम्हारा वहाँ जाना मुझे बिल्कुल भी पसन्द नहीं।" इसलिए मैं अपने मायके न के बराबर ही जाती थी। वैसे गीता माँ मेरी तरफ़ से बोलती थीं और मुझे भी समझाती थीं कि क्यूँ मैं राहुल की हर एक बात चुपचाप सुनती हूँ। अगर बोलूँगी नहीं तो वो और मुझ पर हावी होते जायेगे। मैं गीता माँ से यही कहती कि वो मेरे पति हैं, उनकी बात तो मुझे माननी ही है। वह पलट कर मुझसे कहतीं, "यही कह रही हूँ कि वो पति हैं तुम्हारा। तुम्हारा मालिक नहीं है और न तुम उसका ख़रीदा हुआ कोई सामान जो जैसे चाहे तुम्हें इस्तेमाल करे" लेकिन मेरे ऊपर तो बचपन से दिल में कूट–कूट कर भरा गया अच्छी स्त्री का वह आदर्श काम कर रहा था जिसके अनुसार पति, पत्नी की ज़िन्दगी का मालिक ही होता है और अपनी इच्छाओं को मारना अच्छी औरत की निशानी होती है। आये दिन माँ मेरे लिए राहुल से भिड़तीं और हमेशा की तरह मुझे भी समझातीं लेकिन मैं खुद अपने विकास के लिए ज़िद करना ग़लत मानती। ख़ैर, ऐसे ही ज़िन्दगी चल रही थी।

एक दिन की बात है, राहुल का मोबाइल लगातार बज रहा था। वो बाथरूम में थे। कई बार बजने पर मैने फ़ोन रिसीव करने के लिए उठाया ही था कि फ़ोन कट गया। लेकिन तभी मोबाइल की स्क्रीन पर किसी का मैसेज डिसप्ले हुआ और न जाने कैसे मेरी आँखों के सामने खुल गया। मैंने न चाहते हुए भी उसे पढ़ डाला। उस एक मैसेज़ की कतार में पिछले कई अनगिनत मैसेज खुलते चले गये जिनको पढ़ कर मेरे पैरों से ज़मीन ही निकल गयी। एक बहुत ही

गहरा धक्का दिल को लगा कि वह शादी से अलग कोई रिश्ता चला रहे हैं। वो मेरे साथ ऐसा कैसे कर सकते हैं ? जैसे ही बाथरूम का दरवाज़ा खुला, मैंने झट से मोबाइल को उसकी अपनी जगह पर रख दिया। डर से ज़्यादा मैं गुस्से से काँप रही थी। उस वक़्त धोखे का एहसास मेरे ऊपर इतना हावी था कि मैंने फ़ौरन ही राहुल से उन मैसेजेस के बारे में पूछ लिया। मैं आगे कुछ पूछ पाती कि उससे पहले राहुल के पंजों के निशान मेरे गाल पर दर्ज हो चुके थे। फ़ौरन ही राहुल कमरे से बाहर की ओर बढ़े और साथ ही मुझसे यह कहते हुए गये कि कुछ दिनों के लिए मैं मायके हो आऊँ।

मैं बिल्कुल सन्न ही रह गई। मुझे तो यह समझ में ही नहीं आ रहा था कि उनका शादी से अलग दूसरा रिश्ता बनाना ग़लत था या मेरा उन मैसेजेस को पढ़ना? वैसे, राहुल का तमाचा तो मुझे ही ग़लत साबित कर रहा था। फ़ौरन मेरे मन में यह सवाल उठा कि ऐसे तो राहुल मेरे मायके जाने से चिढ़ते थे लेकिन इस वक़्त उन्होंने वहाँ जाने की बात क्यों कही ? कहीं ये धमकी तो नहीं कि अगर मैंने इस बात को तूल दिया तो वह मुझे छोड़ देंगे ? अब मैं क्या करती ? इस शादी को तो मैं हर हाल में बनाये रखना चाहती थी। क्या करूँ, किससे कहूँ इसी कशमकश में उस घटना को पूरा एक महीना हो गया। राहुल भी मेरे साथ नॉर्मल व्यवहार कर रहे थे क्योंकि उनकी छुपी हुई धमकी खुलकर काम आ रही थी। मैंने इस बात का ज़िक्र किसी से भी नहीं किया, इसलिए उनको लग रहा था कि मैं उस सच्चाई की आदी हो गई हूँ। लेकिन यह सिर्फ़ उनकी सोच थी। वास्तव में, मैं तो अन्दर ही अन्दर घुल रही थी। यह बात गीता माँ के अलावा किसी ने भी महसूस नहीं की। उनके कई बार पूछने पर भी मैं टाल गयी लेकिन एक दिन मैं खुद को रोक ही नहीं पायी और उनके सामने बिखर गयी। मेरी बात सुनते ही उनका चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। सबसे ज़्यादा तो वह इस बात से नाराज़ थीं कि मैंने इतने दिन इतनी बड़ी बात को छुपाये रखा। जब मैंने उन्हें राहुल की धमकी के बारे में बताया तो उन्होंने मुझसे कहा "देखो बेटा, कोई भी चीज़ आत्मसम्मान से बड़ी नहीं होती है, चाहे वह शादी ही क्यों न हो।"

'आत्मसम्मान' यह शब्द नया तो नहीं था मेरे लिये लेकिन क्या लड़कियों का भी आत्मसम्मान होता है ? अगर हाँ तो फिर इस बात का एहसास मुझे पहले किसी ने क्यों नहीं दिलाया? गीता माँ ने मुझे समझाया था कि राहुल क्यों छोड़ेगा, बल्कि वह ही मेरे साथ रहने के लायक़ नहीं है। उन्होंने कहा था, "तुम अब यह सोचो कि तुम क्या चाहती हो? तुम दुनिया वालों की तो बिल्कुल ही न सोचो। वो तो बस यही चाहते है कि लड़की बर्दाश्त करे। 'अच्छी लड़की–अच्छी लड़की' का तमग़ा पहना कर उसे इन्सान भी नहीं रहने देते।" उस समय बड़ा अजीब लगा था कि राहुल की माँ होकर भी वह मुझसे यह सब कह रही हैं। लेकिन दूसरे वक़्त ही मुझे याद आया कि उससे पहले तो वह एक औरत ही हैं। शायद ऐसे हालात वह खुद भी झेल चुकी हों और जो दुःख उन्होंने झेले या जो ग़लतियाँ उन्होंने कीं उनसे वे मुझे बचाना चाहती हों वरना मुझे आश्चर्य था कि ऐसे विचार उनके दिल में कहाँ से आये। लड़की का आत्मसम्मान, लड़की की इच्छा, उसकी गरिमा, इस सबकी जगह तो दुनिया में कहीं नहीं थी जिसका नक्शा मेरे और मेरी सहेलियों के दिल में बचपन से बनाया गया था।

रातभर गीता माँ की बातें मेरे दिमाग़ में घूमती रहीं। गीता माँ ने औरत के सन्दर्भ में मुझे एक नया नज़रिया दिया – औरत का सम्मान। आत्मसम्मान से बढ़कर कुछ भी नहीं। शादी निभाना सिर्फ़ औरत की ही ज़िम्मेदारी नहीं। क्या शादी आदमी के लिए कोई मायने नहीं रखती ? अब मुझे समझ में आ रहा था कि अक्सर लड़कियाँ अच्छी लड़की के कर्तव्य निभाते–निभाते अपने अधिकारों और इच्छाओं को ज़िन्दगी भर खुद अपने पैरों से कैसे रौंदती रहती हैं। वही मैंने भी किया था।

यह सब कुछ सोचते–सोचते कब सुबह हो गयी, पता ही नहीं चला। सुबह होते ही कई काम और कई ज़िम्मेदारियाँ मेरा इन्तज़ार कर रही थीं। लेकिन उससे भी ज़्यादा इन्तज़ार तो मेरा एक फ़ैसला कर रहा था, एक ऐसा फ़ैसला जिसमें मुझे किसी और से ज़्यादा खुद अपने आप की सुननी थी। और किसी और से ज़्यादा मुझे अपनी इच्छाओं और अपनी

तक़लीफ़ों का ध्यान रखना था। झट से मैंने अपना सामान पैक किया और अपने माँ–बाप के घर निकल पड़ी। सच मानिए, इस फ़ैसले ने मुझे बेहद सुकून दिया। मुझे इसकी परवाह भी न थी और क्यों करूँ परवाह ? क्या मिला मुझे अच्छी लड़की बन कर ? बस चन्द तारीफ़ें ? और उन खोखली तारीफ़ों के बदले मेरे सारे अधिकार, मेरी छोटी–छोटी ख़ुशियाँ, यहाँ तक कि मेरा आत्मसम्मान भी मुझसे छीन लिया गया। ज़िन्दगी के 24 साल अच्छी लड़की के नाम पर बलि चढ़ा दिये और अगर गीता माँ जैसी सास न होती तो शायद पूरी ज़िन्दगी ही अच्छी लड़की के नाम पर क़ुर्बान हो जाती। शुक्र है, आज 30 साल की उम्र में मेरे पिछले छह साल बड़े बेशक़ीमती हैं। पी.एच.डी. के साथ–साथ नौकरी तो हासिल हुई ही, साथ ही एक नया आत्मविश्वास भी। आज मैं ख़ुद को समाज द्वारा गढ़ी गयी अच्छी औरत तो नहीं, हाँ एक अच्छे इन्सान की कसौटी पर ज़रूर खरा उतारने की कोशिश करती हूँ। यही मेरी ज़िन्दगी की सबसे क़ीमती शिक्षा है।

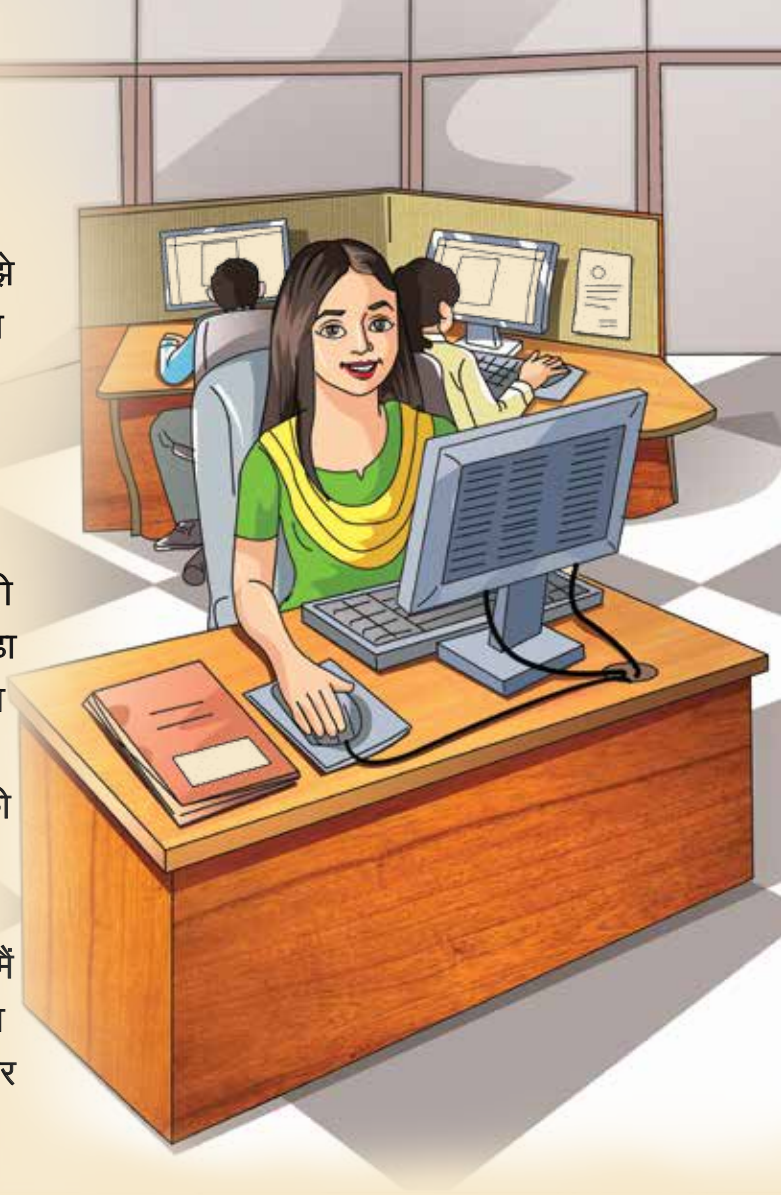

चलो
पूछें वो सभी सवाल
जिनकी मनाही थी कभी।
सवाल पूछना सबूत है
ज़िन्दा होने का और
इन्सान के पास अक़्ल होने का।

चलो
खेलें कोई नया खेल
फूलों और पत्तियों से बतियाने का
हवा की हिलोर से हिल-मिलने का,
चेहरों की उदासी मिटा के
मुस्कुराहटें लाने का।।

रूपरेखा वर्मा

वक़्त बेचैन है
बदलने को
उनके लिये -
चाहते हैं जो
सबके लिए खुशी,
उदारता की रौशनी में
मिलजुल कर
गाना चाहते हैं जो
ज़िन्दगी के गीत,

दिल के हर सँकरे कोने को
देना चाहते हैं जो
चौड़ान अन्तरिक्ष की
बचाना चाहते हैं जो
बच्चों की मासूम हँसी,
वक़्त बेचैन है
बदलने को,
उसे इन्तज़ार है
तुम्हारे हाथ का
तुम्हारे साथ का।।

रूपरेखा वर्मा

प्रकाशक : साझी दुनिया,
कैम्प ऑफ़िस, बी-335 गोल मार्केट,
महानगर, लखनऊ-226006

सहयोग : यूनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रेंस फंड़